तथ्य उपस्थित किया है । अत बहिरङ्ग साक्षियो के द्वारा ही उनके स्थिति काल के सम्बन्ध मे अनुमान लगाना पडता है । इन साक्षियो के द्वारा भारवि का समय छठी शताब्दी का उत्तरार्ध निर्धारित किया जा सकता है । सक्षेप मे वे साक्षिया निम्न है -

(१) भारवि पर निश्चित रूप से कालिदास का प्रभाव पडा है । सस्कृत काव्यो के समालोचको ने कालिदास को भारवि से सदा पहला स्थान दिया । माघ की कविता पर भारवि का बहुत अधिक प्रभाव स्पष्ट है । माघ का समय ७०० ईसवी के लगभग का है अत भारवि को कालिदास का परवर्ती और माघ का पूर्ववर्ती होना चाहिये ।

(२) दक्षिण भारत मे ऐहोल का एक शिलालेख मिला है, जो चालुक्य के राजा पुलकेशिन् द्वितीय की प्रशस्ति मे जैन कवि रविकीर्ति द्वारा लिखा गया था । इस प्रशस्ति मे रविकीर्ति ने अपनी कवित्वशक्ति को कालिदास और भारवि के समान बताया है[१] । यह शिलालेख बीजापुर जिले के ऐहोल नामक ग्राम मे एक प्राचीन मन्दिर मे मिला है । इसका निर्माण ५५६ शकाब्द अर्थात् ६३४ ई० मे हुआ था । इससे प्रतीत होता है कि भारवि इस समय तक एक श्रेष्ठ कवि के रूप मे दक्षिण भारत मे प्रसिद्ध हो चुके थे । अत भारवि का समय सातवी शताब्दी के पूर्व अर्थात् छठी शताब्दी के उत्तरार्ध का निर्धारित किया जा सकता है ।

(३) 'काशिकावृत्ति' मे 'किरातार्जुनीयम्' काव्य का उद्धरण लिया गया है । 'काशिकावृत्ति' की रचना वामन और जयादित्य ने ६५० ई० के लगभग की थी । अत भारवि को सातवी शताब्दी के पूर्व का होना चाहिये ।

(४) बाणभट्ट ने, जो सम्राट हर्षवर्धन के (राज्यकाल ६०६–६४८ ई०) सभा पण्डित थे, अपने काव्यो मे अनेक कवियो का उल्लेख किया है । परन्तु वे भारवि का उल्लेख नही करते । इससे प्रतीत होता है कि भारवि उनसे कुछ ही पहले हुए होगे और उस समय तक उन्होने इतनी ख्याति और प्रति-

---

१ येनायोजि न वेश्म स्थिरमर्थविधौ विवेकिना जिनवेश्म ।
स विजयता रविकीर्ति कविताश्रित कालिदास भारविकीर्ति ॥
ऐहोलशिलालेख ॥

ष्ठा प्राप्त नहीं की होगी। अत भारवि को बाण से कुछ पूर्व छठी शताब्दी के उत्तरार्ध का माना जा सकता है।

(५) दक्षिण भारत में एक पृथ्वीकोगणि नामक राजा का दानपत्र मिला है। इस दानपत्र के अनुसार पृथ्वीकोगणि ने एक जैन मन्दिर की सेवा पूजा के लिये एक गाव दान मे दिया था। इस दानपत्र में उल्लेख है कि उससे सात पीढ़ी पहले दुर्विनीता नाम का पूर्वज हुआ था। वह कोकण के महाराजा अविनीत का पुत्र था। वह बहुत विद्वान् था। उसने 'शब्दावतार' नाम से संस्कृत में 'बृहत्कथा' को निबद्ध किया था और किरातार्जुनीयम्' के पन्द्रहवें सर्ग की टीका की थी।[1]

यह दानपत्र ६९८ शकसंवत् अर्थात् ७७६ ईसवी मे लिखा गया था।[2] अत पृथ्वीकोगणि का यही समय होना चाहिये। यदि प्रत्येक पीढी के लिये पचीस वर्ष का समय दे दिया जाये तो दुर्विनीत का समय इससे १७५ वर्ष पूर्व अर्थात् ६०० ईसवी का होगा। इस आधार पर 'किरातार्जुनीयम्' महाकाव्य के रचयिता का समय इससे पहले का अर्थात छठी शताब्दी के उत्तरार्ध का निर्धारित किया जा सकता है।

(६) दण्डी रचित 'अवन्तिसुन्दरीकथा'[3] मे भारवि के समय के सम्बन्ध मे कुछ अनुमान किया जा सकता है। काञ्ची के पल्लवनरेश सिंह—विष्णु वर्मा ने एक गन्धर्व से भारवि, जिनका वास्तविक नाम दामोदर था, की प्रशंसा सुनकर उनको अपने पास बुलाकर उनका सम्मान किया। भारवि पहले दुर्विनीत के मित्र थे और उसके साथ रहा करते थे। अब सिंहविष्णु वर्मा से उनकी मित्रता हो गई।

इतिहास के अनुसार दुर्विनीत और सिंहविष्णुवर्मा समकालीन थे। सिंह

---

१ श्रीमत्कोकणमहाराजाधिराजस्य अविनीतनाम्न पुत्रेण शब्दावतारकारेण देवभारतीनिबद्धबृहत्कथेन किरातार्जुनीयपञ्चदशसर्गटीकाकारेण दुर्विनीत नामधेयेन। दानपत्र का एक अश॥

२ अष्टानवत्युत्तरशतेषु शकवर्षष्वतीतेषु॥ दानपत्र का एक अश॥

३ अनन्तशयनम् ग्रन्थमाला संख्या १७२ मद्रास १९५४ से इस पुस्तक का प्रकाशन हुआ।

विष्णुवमा का समय ५७५ से ६०० ई० का था। उसन मलय और पाण्ड्य राजाग्रो को पराजित किया था। उसका पुत्र मत्तद्रवमन् (६०० — ६२५ ई०) था। उसने मत विलास नामक प्रहसन की रचना की थी। सिहविष्णुवर्मा के इस सम्बन्ध के आधार पर भी भारवि का समय छठी शताब्दी का उत्तराध होता है।

इन बाह्य साक्षियो के आधार पर भारवि को छठी शताब्दी का उत्तराध का मानने मे कोइ आपत्ति नही होनी चाहिये।

३ भारवि का स्थान और जीवनवृत्त

भारवि के समय के समान ही उसके स्थान और जीवनवृत के सम्बन्ध म भी उतना ही अनिश्चय ह। 'अवन्तिसुन्दरीकथा' से भारवि के जीवन के सम्बन्ध मे कुछ परिचय मिलता हे, यद्यपि अधिकाश विद्वान् इसको प्रामाणिक नही मानत। इसके अनुसार दण्डी भारवि के प्रपौत्र थे। भारवि कौशिक कुल म उत्पन्न हुये थे। इनके पूवज पश्चिमोत्तर प्रदेश (गुजरात) मे आनन्दपुर मे रहते थे। वहा से वे नासिक गये और वहा से अचलपुर नामक स्थान मे जाकर रहने लगे। इस कुल मे नारायणस्वामी नाम के व्यक्ति उत्पन्न हुये। वे भारवि के पिता थे। 'अवन्तिसुन्दरीकथा के प्रसग से यह भी ज्ञात होता हे कि भारवि का वास्तविक नाम दामोदर था और भारवि इनका विरुद रहा होगा। भारवि की मित्रता कोकण के राजा अवनीत के पुत्र दुर्विनीत से हुई, जिसके साहचय म रह कर उनको अनुचित आचरण का भागी बनना पडा। इससे वे अत्यधिक दुखी हुए। इसके बाद उनकी मित्रता पल्लववशी काञ्चीनरेश सिंहविष्णुवर्मा' से हुई। महाराज सिंहविष्णुवर्मा ने भारवि के कवित्व से प्रभावित होकर उनका बहुत अधिक आदर किया।

'अवन्तिसुन्दरीकथा' के इस विवरण को यदि प्रामाणिक मान लिया जावे तो इससे स्पष्ट होता है कि भारवि दक्षिणी भारत के नासिक क्षत्र के निवासी थे। इन्होने अपना अधिकाश समय काञ्ची मे बिताया था।

भारवि की कवि के रूप मे प्रसिद्धि दक्षिण भारत म सातवी शताब्दी के आरम्भ मे ही हो गयी थी। दक्षिण भारत के ऐहाल के ६२४ ई० के अभिलेख मे उनको कालिदास के साथ परिगणित किया गया हे। इस प्रकार सातवी

शताब्दी के पूर्वार्द्ध में दक्षिण भारत में भारवि की प्रसिद्धि हो जाने पर भी सम्भवतः उस समय तक उत्तर भारत में नहीं हुई थी। अन्यथा महाकवि बाण अन्य कवियों के साथ उनका भी उल्लेख करते।

अनेक समालोचक भारवि के काव्यों में वर्णित स्थानों के आधार पर उनके जन्मस्थान के सम्बन्ध में विभिन्न अनुमान करते हैं। 'किरातार्जुनीयम्' के भौगोलिक वृत्तों के आधार पर उनको उत्तर भारत का, मध्य भारत का और सह्याद्रि समुद्र तटवर्ती प्रदेशों का भी सिद्ध करने का प्रयत्न किया गया है। उन वर्णनों से यह सिद्ध करना बहुत कठिन है कि भारवि वस्तुतः उन्हीं स्थानों के रहने वाले थे, परन्तु उनसे यह अवश्य सिद्ध हो जाता है कि भारवि ने उन सभी स्थानों का भ्रमण करके प्रकृति का सूक्ष्म अध्ययन किया होगा। लेकिन साहित्यिक पुस्तकों और अभिलेखों के आधार पर उनको दक्षिण भारत का ही समझना अधिक उपयुक्त होगा।

भारवि के जीवनवृत्त के सम्बन्ध में कोई विशेष बात नहीं मिलती और इस सम्बन्ध में हम अन्धकार में ही हैं। तथापि संस्कृत कवियों में उनके सम्बन्ध में अनेक किंवदन्तियाँ प्रसिद्ध हैं।

एक किंवदन्ती के अनुसार भारवि धारानगरी के निवासी थे और भोज के समकालीन थे। उनके पिता का नाम श्रीधर और माता का नाम सुशीला था। उनका रसिका या रसिकवती नाम की कन्या के साथ विवाह हुआ था। वह भृगुकच्छ भड़ौच के निवासी चन्द्रकीर्ति की पुत्री थी। भारवि के पिता भी प्रकाण्ड पण्डित थे। परन्तु भारवि उनसे भी बढ़कर विद्वान् हुये। भारवि को अपनी विद्या का बड़ा घमण्ड था और वे उद्धत हो गये। पिता के समझाने पर भी उनमें विनम्रता नहीं आई। इसलिये उनके पिता बहुधा भारवि की प्रताड़ना किया करते थे। इससे भारवि बहुत अधिक क्षुब्ध हुये और उन्होंने पिता का वध करने का निश्चय कर लिया। एक समय वे पिता का वध करने के लिये गये, तो द्वार के बाहर से उन्होंने पिता को अपनी अत्यधिक प्रशंसा करते हुये सुना। इससे उनको अत्यधिक लज्जा का अनुभव हुआ। वे पिता के प्रति विरोध के भाव को छोड़कर उनका आदर करने लगे। वस्तुतः उनके पिता चाहते थे कि भारवि में पाण्डित्य के साथ साथ निरभिमानिता का भी गुण आवे। इसीलिये वे पुत्र की प्रताडना किया करते थे।

पिता के प्रति मने अनुचित व्यवहार किया है, इससे लज्जित होकर भारवि प्रायश्चित करने के लिये पत्नी को साथ लेकर सुसराल म रहने लगे। वहा छ मास तक रह कर उन्होने अपना महाकाव्य की रचना प्रारम्भ कर दी। परन्तु बहुत समय तक सुसराल म रहने से उनका अनादर होने लगा। उनकी पत्नी भी दुखी रहने लगी और उनको धन के अभाव मे बहुत कष्ट होने लगा।

पत्नी को धन के बहुत कष्ट म देख कर एक बार भारवि ने एक श्लोक का आधा हिस्सा लिखा। उसको पत्नी को देकर कहा कि वह इसे किसी गुणी पुरुष को देकर बदले मे धन ले आवे। भारवि की पत्नी उस श्लोकार्ध को वधमान नामक सेठ की पत्नी को देकर कुछ धन ले आयी। उस समय वह सेठ व्यापार के काय स परदेश गया हुआ था। सेठ की पत्नी ने उस श्लोकार्ध को लकडी के पट्ट पर लिखवा कर अपने शयनकक्ष म टाग दिया। लगभग १५ वर्षों के बाद सेठ बाहर से लौटा।

बाहर से आते ही सेठ ने देखा कि कोई नवयुवक उसकी पत्नी के पास सो रहा है। पत्नी को दुश्चरित समझ कर सेठ पत्नी का और उस नवयुवक का वध करने के लिए उद्यत हो गया। तभी उसकी दृष्टि सहसा उस श्लोकार्ध पर पडी। उसका अर्थ था कि किसी काय को बिना सोचे समझे एकाएक नही कर बैठना चाहिये, क्योकि अविवेक परम आपत्तियो का स्थान होता है। यह देखकर वह रुक गया। उसने अपनी पत्नी को जगा कर सारी बात पूछी।

पत्नी ने बताया कि जब आप बाहर गये थे, उस समय मे गर्भवती थी। आपके जाने के बाद मुझसे यह पुत्र उत्पन्न हुआ। अब यह पन्द्रह वर्ष का हो गया है। सब वृत्तान्त जानकर सेठ को श्लोकार्ध की रचना करने वाले कवि के प्रति श्रद्धा उत्पन्न हुई। उसने भारवि कवि को बहुत सा धन देकर उस श्लोक को पूरा कराया। वह श्लोक इस प्रकार है—

सहसा विदधीत न क्रियामविवेक परमापदा पदम्।
वृणते हि विमृश्यकारिण गुणलुब्धा स्वयमेव सम्पद ॥

किरातार्जुनीयम् २ ३० ॥

अर्थात् किसी काय को एकाएक नही करना चाहिये। अविवेक परम

आपत्तियो का स्थान है। गुण की लोभी सम्पत्तिया सोच समझ कर कार्य करने वाले का स्वय ही वरण कर लेती है।

इस प्रकार की जनश्रुतियो से चाहे हमको भारवि के जीवनवृत का सही ज्ञान न होता हो, तथापि उनकी कविताओ और सूक्तियो का महत्त्व अवश्य ही ज्ञात होता है।

४ भारवि का कृतित्व और "किरातार्जुनीयम्" की कथावस्तु का साराश

भारवि की एक ही रचना "किरातार्जुनीयम्" प्राप्त होती है। इस एक ही काव्य ने कवि को अक्षय यश प्रदान किया है और उनकी गणना सस्कृत के श्रेष्ठ महाकवियो मे की जाती है। उनके काव्यो को सस्कृत बृहत्त्रयी मे सबसे प्रथम स्थान दिया गया है।

"किरातार्जुनीयम्" महाकाव्य का मूल कथानक 'महाभारत' से लिया गया है। इसको कवि ने अपनी निजी कल्पनाओ और काव्य प्रतिभा से बहुत अधिक बढा लिया है। यदि कवि केवल महाभारत के कथानक को ही लेते, तो यह केवल चार पाँच सर्गो मे ही समाप्त हो जाता। परन्तु कवि के वर्णनो ने इस कथानक को बढाकर अठारह सर्गो के विशाल महाकाव्य मे परिणत कर दिया।

कथावस्तु का साराश

काव्य का प्रारम्भ युधिष्ठिर द्वारा गुप्तचर बना कर भजे गये किरात के लौट आने से होता है। द्यूत मे हारकर पाचो पाण्डव शर्त के अनुसार बारह वर्षो की बनवास की अवधि को बिताने के लिये द्वैतवन मे रहने लगे। युधिष्ठिर को चिन्ता हुई कि क्या पता दुर्योधन हमारा राज्य वापिस करे या नही। उन्होने एक किरात को गुप्तचर नियुक्त करके दुर्योधन के राज्य की व्यवस्था और उसके मनोभावो को जानने के लिए हस्तिनापुर भेजा। वह किरात ब्रह्मचारी का वेश धारण करके हस्तिनापुर गया और सब समाचारो को ज्ञात करके द्वैतवन मे युधिष्ठिर के पास वापिस आया।

गुप्तचर ने सूचना दी कि दुर्योधन ने (काव्य मे दुर्योधन के लिये सुयोधन नाम का प्रयोग हुआ है) अपनी उत्तम प्रशासन की नीतियो से प्रजा को प्रसन्न

कर लिया है। उनके सेवक उनके प्रति अनुरक्त है। अधीनस्थ राजा उससे स्नेह करते है और उसके पास ऐसे पराक्रमी वीर है, जो उसके लिये प्राणो का उत्सर्ग करने के लिये सन्नद्ध है। किन्तु वह आप पाण्डवो से भयभीत है और गुप्त रूप से आप सबका वध करा देना चाहता है। किरात द्वारा लाये गये इन समाचारो को जानकर द्रौपदी अत्यधिक क्रुद्ध हुई। उसने युधिष्ठिर के क्रोध को जागृत करने के लिये अपनी और पाण्डवो की दयनीय स्थिति का वर्णन किया। उसने शान्त स्वभाव के युधिष्ठिर को ताने देकर युद्ध के लिये उत्साहित करना चाहा (सर्ग–१)।

पाडवो और द्रौपदी का इस सम्बन्ध मे वार्तालाप हुआ। भीम ने द्रौपदी के कथन का समर्थन किया। उसने कहा कि हम भाइयो के तेज को कौन शत्रु सहन कर सकता है। परन्तु युधिष्ठिर भीम के मत से सहमत नही हुये। उन्होने नीतियुक्त उक्तियो से भीम के क्रोध को शान्त किया और कहा कि परिस्थितिया अभी हमारे अनुकूल नहीं है। परिस्थितियो के अनुकूल होने पर ही हमको युद्ध करना चाहिये। इसी समय भगवान् वेदव्यास वहा आये। (सर्ग–२) ॥

परामर्श लेने पर व्यास जी ने कहा कि दुर्योधन के साथ युद्ध होना तो अनिवार्य है। परन्तु दुर्योधन बहुत बलवान् है। इसलिये पाण्डवो को पहले शक्ति का संग्रह करना चाहिये। इसके लिये उन्होने परामर्श दिया कि अर्जुन भगवान् शिव की आराधना करके उनसे शस्त्र प्राप्त करे। वे अर्जुन को तपस्या करने की विधि बताकर तिरोहित हो गये। इसी समय एक यक्ष वहा प्रकट हुआ। द्रौपदी और भाईयो के शुभाशंसनो से प्रोत्साहित अर्जुन ने शिव की आराधना के लिये यक्ष के साथ इन्द्रकील पर्वत की ओर प्रस्थान किया। (सर्ग–३)। इन्द्रकील पर्वत की ओर जाते हुए अर्जुन ने शरद् ऋतु की शोभा को देखा। शरद् के सौन्दर्य से मुग्ध यक्ष ने उसका सुन्दर वर्णन अर्जुन के सामने किया। अर्जुन और यक्ष उस ऋतु के सौन्दर्य का अवलोकन करते हुये हिमालय पर पहुचे (सर्ग–४)।

यक्ष ने हिमालय के सौन्दर्य का चित्रण करके इस पर्वत का शिव और पार्वती के साथ सम्बन्ध बताया। वह अर्जुन को सावधान और संयतेन्द्रिय रह

कर इन्द्रकील पवत पर तपस्या करने के लिये कह कर तिरोहित हो गया। (सर्ग–५)। उस रमणीक पवन पर अर्जुन ने कठोर तप करना प्रारम्भ किया। इससे वहाँ रहने वाले यक्ष भयभीत हो गये। वे सहायता के लिये देवराज इन्द्र के पास गये। अर्जुन की तपस्या से डरे हुए इन्द्र ने देवांगनाओं और गन्धर्वों को आदेश दिया कि वे इन्द्रकील पवत पर जावें और अर्जुन की तपस्या को भंग करें। (सर्ग–६)।

इन्द्र द्वारा भेजी गई देवाङ्गनायें और गन्धर्व वायुमार्ग से इन्द्रकील पवत पर पहुँचे और उन्होंने वहाँ अपना डेरा डाल दिया। (सर्ग ७)। अपनी मायावी शक्ति से बनाये गये प्रासादों से निकल कर देवांगनायें वनविहार के लिये निकलीं। वे लताकुञ्जों में पुष्पों का चयन करने और विविध प्रकार की सरस कामक्रीडायें करने लगीं। गंगा ने स्नान करने के लिये उनको आमन्त्रित किया। देवांगनायें और गन्धर्व आकर्षक कामक्रीडायें करते हुए स्नान करने लगे। (सर्ग ८)। इन सरस कामक्रीडाओं में दिन समाप्त हो गया। सन्ध्या हुई। सूर्य अस्त हुआ और चन्द्रमा का उदय हुआ। इस मादक वातावरण ने देवांगनाओं को कामपीडित कर दिया। वे अपने प्रेमियों के साथ सुरापान करती हुई रतिसुख का अनुभव करने लगीं। इन्हीं विलासों में रात्रि समाप्त होकर प्रभात हो गया। (सर्ग ९)।

अब देवांगनायें अपने कार्य को पूरा करने के लिये निकलीं। उन्होंने उन्माद वातावरण को उत्पन्न किया। अर्जुन के व्रत को डिगाने के लिये उन्होंने छः ऋतुओं की सहायता ली और उस युवक तपस्वी पर अपनी सारी मोहक शक्ति लगा दी। गन्धर्वों ने वीणा बजाई, अप्सराओं ने नृत्य किया परन्तु युवक तपस्वी को वे विचलित नहीं कर सके। अर्जुन के सौन्दर्य के प्रति अप्सरायें स्वयं आसक्त हो गईं। अन्त में अपने प्रयत्नों में असफल होकर गन्धर्व और अप्सरायें लौट गये। (सर्ग–१०)। सेवकों की असफलता और अर्जुन की दृढता को देखकर इन्द्र प्रभावित हुये। वे मुनिवेश धारण करके अर्जुन के पास आये। अर्जुन के उत्साह की प्रशंसा करते हुये उन्होंने तपस्या का उद्देश्य जानने का प्रयत्न किया। उन्होंने कहा कि शस्त्र धारण करना और तपस्या करना परस्पर विरोधी हैं। इन्द्र के अधिक्षेप को स्वीकार कर।

अर्जुन ने अपनी कथा कही कि मुझे अपने शत्रु से प्रतिशोध लेना है। उसने कहा कि या तो मैं तपस्या करता हुआ इस पर्वत पर अपना जीवन समाप्त कर दूंगा या इन्द्र को प्रसन्न करके शत्रुओं का विनाश करूंगा। प्रभावित होकर इन्द्र ने अपना रूप प्रकट किया और अर्जुन को शिव की कृपा को प्राप्त करने के लिये कह कर अन्तर्हित हो गया। (सर्ग–११)

अर्जुन शिव की आराधना में लीन हो गया। उसकी कठोर तपस्या से विह्वल हुये ऋषि मुनि शिव से प्रार्थना करने लगे। शिव ने ऋषियों को अर्जुन का वास्तविक रूप समझाया। अर्जुन आदि पुरुष विष्णु के अंशरूप नर का अवतार है। वह प्रजा को पीड़ित करने वाले शत्रुओं का विनाश करने के लिये मेरी आराधना कर रहा है। इसी समय मूक नाम का एक दानव वाराह का रूप धर कर अर्जुन को मारने के लिये तयार हुआ। किरात का रूप रख कर शिव उसकी रक्षा करने के लिये जाने लगे और उन्होंने अपने गणों को पीछे आने का आदेश दिया। (सर्ग–१२)। वाराह अर्जुन को मारने के लिये सामने आया। उस समय अर्जुन और किरात ने एक साथ बाण मारे। किरात का बाण तो लक्ष्य को वेध कर भूमि में घुस गया परन्तु अर्जुन का बाण वाराह के शरीर में विधा रह गया। बाणों से विद्ध वराह मृत होकर भूमि पर गिर गया। शिव का किरात वेषधारी एक गण और अर्जुन बाण को लेने के लिये वाराह के पास आये उनमें बाण के स्वामित्व के सम्बन्ध में विवाद हुआ। गण ने अपने स्वामी के नाम पर बाण को मांगा। (सर्ग–१३)।

अर्जुन ने एक लम्बे भाषण द्वारा बाण देना अस्वीकार कर दिया। किरात वापिस चला गया। तब शिव ने गणों की सेना को अर्जुन से युद्ध करने के लिये भेजा। इस सेना ने अर्जुन पर आक्रमण किया। परन्तु अर्जुन ने उनके बाणों की वर्षा को अनायास ही झेल लिया। शिव की सेना पराजित होकर भाग गई। (सर्ग-१४)। शिव और स्कन्द ने भागती हुई सेना को धैर्य बंधा कर रोका। अब अर्जुन और शिव का बाणों से घोर युद्ध हुआ। (सर्ग–१५)। किरात की रणकुशलता को देखकर अर्जुन का क्रोध भड़क उठा, परन्तु उसकी शक्ति असफल रही। अपनी असफलता पर उसको आश्चर्य हुआ। उसने दिव्य अस्त्रों ब्रह्मास्त्र, वरुणास्त्र आदि का प्रयोग किया। परन्तु उनको भी शिव ने

विफल कर दिया। तब अर्जुन धनुष को छोड़कर मल्लयुद्ध करने के लिये तत्पर हो गये। (सर्ग–१६)।

शिव की बाण वर्षा से क्रोधित अर्जुन ने पुनः गाण्डीव उठा लिया और ऐसी बाण वर्षा की कि शिव की सेना घबरा गई। शिव ने अर्जुन के बाणों को काट कर उसके कवच, धनुष आदि सबको एक एक करके निष्फल कर दिया। अब अर्जुन बड़ी बड़ी चट्टानों और पेड़ों के तनों से शिव पर प्रहार करने लगा। परन्तु वे सब भी निष्फल हो गये। (सर्ग–१७)। शस्त्रों के निष्फल हो जाने पर अर्जुन शिव पर मुक्कों का प्रहार करने लगे। दोनों में भयङ्कर मल्लयुद्ध होने लगा। उस समय अर्जुन पर प्रहार करने के लिये जब शिव ऊपर को उछले, अर्जुन ने उनको गिराने के लिये उनके दोनों पैर ऊपर ही पकड़ लिये। अब शिव ने अपना वास्तविक रूप प्रकट किया। अर्जुन ने शिव की महत्ता की स्तुति की और उनसे युद्ध में विजय दिलाने वाली युद्ध विद्या की याचना की। शिव ने अर्जुन को पाशुपत अस्त्र धारण करा कर धनुर्वेद की शिक्षा दी। अर्जुन के धनुर्वेद को प्राप्त करने के अनन्तर शिव की अनुमति प्राप्त करके इन्द्र आदि लोकपालों ने अपने दिव्य अस्त्रों को अर्जुन के लिये प्रदान किया। तदनन्तर शिव से शत्रुओं को जीतने का आशीर्वाद पा अर्जुन ने घर लौटकर बड़े भाई युधिष्ठिर को प्रणाम किया—

व्रज जय रिपुलोकं पादपद्मानतः सन्,
गदित इति शिवेन श्लाघितो देवसङ्घैः।
निजगृहमथ गत्वा सादरं पाण्डुपुत्रो
धृतगुरुजयलक्ष्मीर्धर्मसूनुं ननाम॥ कि० १८.४८॥

५ 'किरातार्जुनीयम्' का महाकाव्यत्व

महाकवि भारवि की रचना 'किरातार्जुनीयम्' को महाकाव्य की संज्ञा दी जाती है। आचार्य दण्डी ने महाकाव्य का लक्षण इस प्रकार दिया है—

सर्गबन्धो महाकाव्यमुच्यते तस्य लक्षणम्।
आशीर्नमस्क्रियावस्तुनिर्देशो वापि तन्मुखम्॥
इतिहासकथोद्भूतमितरद् वा सदाश्रयम्।
चतुर्वर्गफलायत्तं चतुरोदात्तनायकम्॥

नगरार्णवशैलर्तुचन्द्रार्कोदयवर्णनैः ।
उद्यानसलिलक्रीडामधुपानरतोत्सवैः ॥
विप्रलम्भैर्विवाहैश्च कुमारोदयवर्णनैः ।
मन्त्रदूतप्रयाणाजिनायकाभ्युदयैरपि ॥

अलंकृतमसंक्षिप्तं रसभावनिरन्तरम् ।
सर्गैरनतिविस्तीर्णैः श्रव्यवृत्तैः सुसंधिभिः ॥
सर्वत्र भिन्नवृत्तान्तैरुपेतं लोकरञ्जकम् ।
काव्यं कल्पान्तरस्थायि जायते सदलंकृति ॥

काव्यादर्श १ १४–१९॥

काव्य अनेक सर्गों का होता है। इसको आशीर्वाद, देवता के प्रति नमस्कार या कथावस्तु का निर्देश करके प्रारम्भ किया जाता है। इसका कथानक किसी ऐतिहासिक कथा के या किसी सत्पुरुष की कथा के आधार पर रचित होता है। यह धर्म-अर्थ काम मोक्ष इन चार पुरुषार्थों की सिद्धि के लिये लिखा जाता है। नायक चतुर और उदात्त होता है। महाकाव्य में नगरों, समुद्रों, पर्वतों, ऋतुओं, चन्द्रोदय, सूर्योदय आदि का वर्णन किया जाता है। इसमें उद्यानविहार, जलक्रीडायें, मधुपान, सम्भोग, शृङ्गार, विवाह, कुमारों का जन्म नायक की विजय आदि का वर्णन रहता है। वर्णना में अलंकारों का चमत्कार, होना चाहिये और वे संक्षिप्त नहीं होने चाहिये। उनमें रस और भावों की अभिव्यञ्जना होनी चाहिये। सर्ग बहुत लम्बे नहीं होने चाहिये। छन्द सुन्दर और गेय होने चाहिये। सन्धियों का सम्यक रूप से निर्वाह करना चाहिये। सर्गों में विभिन्न घटनायें होनी चाहियें और सर्ग के अन्त में छन्द बदल देना चाहिये। इस प्रकार का काव्य पाठकों और श्रोताओं के लिये मनोरञ्जक होता है और कवि की कीर्ति को प्रलय पर्यन्त अक्षय रखता है।

इन लक्षणों के अनुसार भारवि के 'किरातार्जुनीयम्' को महाकाव्यों की श्रेणी में रखा जा सकता है। इसमें १८ सर्ग हैं। इसको कथावस्तु के निर्देश के साथ प्रारम्भ किया गया है। इसका कथानक 'महाभारत' की इतिहास प्रसिद्ध घटना के आधार पर निबद्ध हुआ है। यह चतुर्वर्ग की प्राप्ति में सहायक है। काव्य का नायक अर्जुन चतुर और उदात्त है। इस महाकाव्य में विभिन्न

स्थाना ऋतुगा उपवन विहार, जलक्रीडा मधुपान, शृङ्गार, युद्ध नायक की विजय आदि का विस्तृत और सरस वर्णन है। ये वर्णन विभिन्न अलंकारो से अलङ्कृत है। इनमे रस और भावो की उत्तम अभिव्यञ्जना है। सर्ग न तो बहुत छोटे है और न बहुत विस्तृत। छन्द श्रव्य और गेय है। सन्धियो का सम्यक आयोजन किया गया है। सर्गों म विभिन्न घटनाओं का सयोजन है, सर्ग के अन्त म भिन्न छन्दो का प्रयोग हुआ है।

इस प्रकार 'किरातार्जुनीयम्' महाकाव्य पाठको और श्रोताओ का मनोरञ्जन करने वाला होकर महाकवि भारवि की कीर्ति को चिरस्थायी कर रहा है।

६ 'किरातार्जुनीयम्' महाकाव्य पर शास्त्रीय दृष्टि से विचार

काव्यशास्त्रीय दृष्टिकोण से विचार करने के लिये इस प्रकरण म निम्न विषयो की समालोचना की गई है—काव्य का नायक, चरित्र चित्रण, काव्य की शैली रस की अभिव्यक्ति, प्रकृति चित्रण, अलकारो का आयोजन और छन्द विधान।

(क) काव्य का नायक

"किरातार्जुनीयम्' महाकाव्य का नायक अर्जुन है। किरातार्जुनीयम् शब्द की व्युत्पत्ति इस प्रकार है—किरातश्च अर्जुनश्च किरातार्जुनौ। तौ अधिकृत्य, कृत काव्यम् अर्थ मे 'छ' प्रत्यय होकर 'छ' को 'ईय' होकर किरातार्जुनीयम् रूप निष्पन्न होता है। काव्य के नाम से ही स्पष्ट होता है कि इसमे किरात और अर्जुन का वर्णन प्रमुख है। क्योकि काव्य का मुख्य उद्देश्य किरात रूपधारी शिव से अर्जुन को विजय प्राप्त कराने वाली शस्त्र विद्या को दिलवाना है। अत मुख्य फल को प्राप्त करने वाला होने से अर्जुन ही इस काव्य का नायक होता है। मल्लिनाथ ने अर्जुन को ही इस महाकाव्य का नायक माना है।

परन्तु 'किरातार्जुनीयम् के दूसरे टीकाकार चित्रभानु इस काव्य का नायक अर्जुन को न मान कर युधिष्ठिर को मानते है। उनका कहना है कि कथा के प्रारम्भ मे, कथा के मध्य मे और कथा के अन्त मे युधिष्ठिर ही मुख्य रूप मे आते है। प्रारम्भ मे तो वे है ही। वनेचर उन्ही के पास आकर दुर्योधन का

सारा वृत्तान्त कहता है। मध्य मे भी कवि ने अर्जुन के द्वारा उन्ही के महत्त्व की प्रतिष्ठा कराई है[1] और अन्त मे भी अर्जुन दिव्यशस्त्रो को प्राप्त करके उन्ही के चरणो मे प्रणाम करता है[2] वस्तुत अर्जुन द्वारा दिव्य शस्त्रो को प्राप्त करना युधिष्ठिर की विजयो के लिये साधनरूप है। अत युधिष्ठिर ही इस काव्य का नायक है।

परन्तु ये अधिक सगत नही है। काव्य मे अर्जुन का महत्त्व युधिष्ठिर की अपेक्षा बहुत अधिक है। यद्यपि अर्जुन पहले सर्ग मे नही आते, तो भी तीसरे सर्ग से लेकर काव्य के अन्त तक उन्ही के चरित्र का कवि ने मुख्य रूप से वर्णन किया है। तीसरे सर्ग के बाद इस काव्य मे युधिष्ठिर प्रत्यक्ष रूप से कही उपस्थित नही होते। कही कही उनका नाम अवश्य आ जाता है। कवि ने स्वय काव्य का नाम 'किरातार्जुनीयम्' रखकर युधिष्ठिर की अपेक्षा अर्जुन को अधिक महत्त्व दिया है। इसलिये अर्जुन को ही इस काव्य का नायक मानना चाहिये। मल्लिनाथ का यह कहना ठीक ही है कि इस काव्य का नायक मध्यम पाण्डव अर्जुन है। उसी के उत्कर्ष का इस काव्य मे वर्णन है और उसी को दिव्य अस्त्रो की प्राप्ति रूप फल मिलता है।[3]

(ख) चरित्र चित्रण—

'किरातार्जुनीयम्' का कथानक 'महाभारत' से गृहीत होने के कारण इसके पात्र लोकविश्रुत है और इनकी विशेषताओ से सभी परिचित है। कवि ने अपनी प्रतिभा, कल्पना और प्रौढ उक्तियो द्वारा इनमे एक नये जीवन का सन्निवेश किया है। इस पुस्तक मे केवल प्रथम सर्ग की ही टीका होने के कारण इस सर्ग मे आये पात्रो के चरित्रो की विशेषताये बताई जा रही है।

युधिष्ठिर—

यद्यपि प्रथम सर्ग मे युधिष्ठिर के मुख से किसी उक्ति को नही कहलाया गया, तथापि अन्य वर्णनो से उनकी अनेक विशेषताये अभिव्यक्त हो जाती है। युधिष्ठिर सत्य का पालन करने वाले, धर्म पर दृढ रहने वाले, सहनशील और

---

१ किरातार्जुनीयम् ११ ८५ और ११ ७७॥ २ किरातार्जुनीयम् १८ ४८

३ नेता मध्यमपाण्डवो भगवतो नारायणस्यांशज—

स्तस्योत्कर्षकृतेऽनुवर्ण्य चारितो दिव्य किरात पुन ॥ मल्लिनाथ ॥

राजनीति म चतुर है। द्यूत मे हार कर वनो मे रहते हुये भी वे इस ओर से उदासीन नही ह कि उनका शत्रु दुर्योधन क्या कर रहा है। उसके निचारो उद्देश्यो और कार्यो को जानने के लिये वे गुप्तचर भेजते रहते है। शत्रु पर आक्रमण करने स पहले व उसकी सम्पूर्ण गतिविधि जान लेना चाहते है। वे इस अवसर की प्रतीक्षा मे है कि कब उनका शत्रु कमजोर होता है और वे उस पर आक्रमण करके विजय प्राप्त कर सक। पूरी शक्ति का सग्रह किये बिना व आक्रमण करना उचित नही समझते।[1] द्रौपदी और भीम द्वारा उत्साहित किये जाने पर भी उनके मन म विकार उत्पन्न नही होता और वे स्नेहभाव से सहज और युक्ति युक्त शब्दो मे अपनी नीतियो को उनको समझा देते है।

वनेचर—

प्रथमसर्ग गुप्तचर के रूप मे भेजे गये वनेचर के हस्तिनापुर से वापिस लौटने से प्रारम्भ होता है। प्राचीन राजनीति म अपने राष्ट्र की गतिविधियो को जानने और शत्रुओ के गुप्त भेदो का पता करने के लिये तथा उनम भेद उत्पन्न कराने के लिये सुसगठित गुप्तचर व्यवस्था का होना अत्यन्त आवश्यक होता था। राजा गुप्तचरो द्वारा राष्ट्रो की गतिविधियो को जानकर अपने कर्त्तव्य कार्यों का निर्धारण करता था। अत राजाओ को चारचक्षु कहा जाता था[2]।

गुप्तचर के लिये चार गुणो का होना अनिवार्य होता था—अमूढता, अप्रमादित्व, सत्यपरता और ठीक प्रकार से अनुमान कर सकने की क्षमता। युधिष्ठिर द्वारा गुप्तचर बनाकर भेजे गये गुप्तचर मे ये सभी गुण थे। उसने ब्रह्मचारी का वेष बनाकर और हस्तिनापुर जाकर दुर्योधन के सभी विचारो, योजनाओ, कार्यों और उद्देश्यो को ठीक प्रकार से जान लिया और आकर युधिष्ठिर को बताया। यद्यपि उनके द्वारा लाये गये समाचार युधिष्ठिर के लिये अप्रिय थे, तथापि वह उनके कहने म हिचकिचाया नही। युधिष्ठिर के कर्त्तव्य कार्यों को उसने स्पष्ट रूप से उसके सम्मुख कह दिया।

वनेचर कार्य करने मे चतुर था। उसने दुर्योधन की दुरभि सन्धियो और तैयारियो को पूरी तरह से जान लिया। अपनी बात को उसने स्पष्ट और ठीक

---

१ 'किरातार्जुनीयम्' २ ४४—७७।। २ किरातार्जुनीयम्' १ ४।

रूप से तथा प्रभावशाली ढग स कहा । उसकी वाणी सौष्ठव और औदार्य गुणो से युक्त थी और उसके कथन प्रमाणो से निश्चित अर्थ को व्यक्त करते थे[१] । वह राजा का हितैषी था और अप्रिय लगने वाले भी हितकारी वचनो को कहने म हिचकिचाया नही था[२] । तथापि वह अति विनम्र था और अपने कार्यों की सफलता के लिए उसने स्वामी की कृपा को ही श्रेय दिया[३] ।

दुर्योधन—

काव्य के प्रथम सर्ग मे कवि ने दुर्योधन के चरित और नीतियो को सक्षेप मे बताया है । इस प्रसग मे कवि ने दुर्योधन को सुयोधन नाम से अभिहित किया, क्योकि उसकी नीतिया प्रजा को सुख पहुचाने वाली थी । वस्तुत कवि ने दुर्योधन की नीतियो का उल्लेख करने म राजा के कर्त्तव्यो का उल्लेख किया था ।

'किरातार्जुनीयम्' का दुर्योधन एक नीतिमान् और प्रजावत्सल राजा है । वह जानता है कि उसके राज्य की स्थिरता और सुख प्रजा और सेवको की ने दुर्योधन की नीतियो का उल्लेख करने मे राजा के कर्त्तव्यो का उल्लेख दिया है ।

'किरातार्जुनीयम्' का दुर्योधन एक नीतिमान् और प्रजावत्सल राजा है । वह जानता है कि उसके राज्य की स्थिरता और सुख, प्रजा और सेवको की अनुरक्ति पर निर्भर है । देश का धन और धान्य स समृद्ध बनाने के लिये वह कृषि की उन्नति करना अपना कर्त्तव्य समझता है और कृत्रिम सिंचाई के साधन प्रस्तुत करता है[४] । सेवको को उसने अपना अनुरक्त बना लिया था । वह अहकार से शून्य होकर उनके साथ मित्रो के समान व्यवहार करता था । उसने पराक्रमी वीर अपने पास एकत्र किये थे, जो उसके उत्तम व्यवहार के कारण

---

१ स सौष्ठवौदार्य विशेष शालिनी विनिश्चितार्थामिति वाचमाददे ।

२ न विव्यथतस्य मनो न हि प्रिय प्रवक्तुमिच्छन्ति मृषा हितैषिण ।
कि० १ २ ॥

३ तव नुभावोऽयमवेन्हि य मया निगूढतत्त्व नयवर्त्म विद्विषाम् । कि० १ ६।

४ 'किरातार्जुनीयम्' १ १७॥

प्राणो म भी उसका हित करना चाहते थे[1] ।

दुर्योधन के सामन्त राजा के प्रति भय के कारण नही अपितु श्रद्धा और प्रेम क कारण उसके आदेशो का पालन करत थ । उसको कभी क्रोध करने अथवा शस्त्रा को उठाने की आवश्यकता नही होती थी[2] । राजनीति के छ अगो—सन्धि, विग्रह, यान आसन, सश्रय और द्वैधीभाव का पयोग करने मे वह कुशल था । चार उपायो—साम दाम दण्ड और भेद के प्रयोगो का वह सफलता के साथ कर सकता था[3] । न्याय करने मे वह पक्षपात नहा करता था[4] ।

प्रजा के अपने प्रति अनुरागी होने पर और पराक्रमी योद्धाओ और सामन्तो का स्वामी होन पर भी शत्रु की शक्ति से उदासीन नही था । भीम और अर्जुन की सामथ्य को वह जानता था और कूटनीति का प्रयोग करके इन काटो को किसी भी प्रकार से निकाल देने के लिये उद्यत था ।

द्रौपदी—

"किरातार्जुनीयम्' की द्रौपदी विशेष तेजस्विता के गुणो से युक्त है । युधिष्ठिर की नीतिया सत्यप्रतिज्ञता के पालन और शान्त स्वभाव के कारण सबसे अधिक कष्ट और अपमान उसी का झेलने पडे थे । इस कारण दुर्योधन स प्रतिशोध लेने की आकाक्षा सबसे अधिक उसी को थी । शत्रु की सफलता के समाचारो से उसका क्रोध भडक जाता है और वह अपने को नियन्त्रण मे नहा रख सकती । वह ओजस्विनी वाणी मे युधिष्ठिर के क्रोध का भडकाने का पयत्न करती है[5] । वह युधिष्ठिर से कहती है कि तुम जसा कायर और कौन होगा जा स्वय ही अपनी राजलक्ष्मी और कुलवधू का शत्रुओ द्वारा अपहरण करा दे[6] । वह युधिष्ठिर को क्षत्रियो, राजाओ के समान आचरण

१ महौजसो मानधना धनार्चिता धनुर्भृत सयति लब्धकीर्तय ।
न सहतास्तस्य न भेदवृत्तय प्रियाणि वाञ्छन्त्यसुभि समीहितुम् ।
कि० १ १९॥

२ 'किरातार्जुनीयम्' १ २१॥ ३ 'किरातार्जुनीयम्' १ १२–१४॥

४ 'किरातार्जुनीयम्' १ १३॥

५ 'किरातार्जुनीयम्, १ २७ ॥ ६ 'किरातार्जुनीयम्' १ ३१ ॥

करने का उपदेश देती है और उसकी मध्यप्रतिनता को लोग कहती है। वह पहले भीम, अर्जुन, नकुल और सहदेव को प्राप्त होने वाले कष्टों का वर्णन करती है और उसके बाद स्वय युधिष्ठिर को प्राप्त होने वाले दुखो और अपमानो को बताती है[1] और ये सब विपत्तिया स्वय नही आइ, अपितु शत्रु दुर्योधन द्वारा उत्पन्न की गई थी।

द्रौपदी युधिष्ठिर से कहती है कि जो मनुष्य क्रोध नही कर सकता, शत्रु उससे भय नही करते और मित्र उसका आदर नही करते[2]। इसलिये युधिष्ठिर को चाहिये कि वह किसी भी बहाने से सन्धि को तोड दे और समय की प्रतीक्षा न करके अपने पराक्रम से शत्रुओ को जीत ले[3]। शान्ति और क्षमा मुनियो के लिये ही उचित है राजाओ के लिये नही। यदि शान्ति और क्षमा का पालन करना ही है तो उसको राजाओ के चिह्न धनुष को छोडकर जटाओ को धारण करके अग्नि मे आहुति देते रहना ही उचित है[4]।

(ग) काव्य की शैली

भारवि ने काव्य मे कलापक्ष और भावपक्ष दोनो के ही महत्त्व को स्वीकार किया है। उनका मत है कि काव्य मे शब्द और अर्थ दोनो का ही महत्त्व है। जो बात कही जावे, वह निश्चित अर्थ वाली एव प्रमाणो से युक्त होनी चाहिये[5]। काव्य मे जो वाणियाँ कही जावे, उनके पदो का अर्थ स्पष्ट होना चाहिये। उसमे अर्थ का गौरव होना चाहिये और अर्थो मे पुनरुक्ति भी नही होनी चाहिये। वे अभीप्सित अभिप्राय को प्रकट करने मे समर्थ होने चाहिये[6]।

भारवि की काव्य शैली के सम्बन्ध मे आलोचको की प्रसिद्ध उक्ति है—'भारवेरर्थगौरवम'। अर्थात भारवि के काव्य की विशेषता अर्थो मे गौरव का होना है। स्वय भारवि ने 'किरातार्जुनीयम' के स्थान स्थान पर अपनी इस काव्यगत विशेषता का समर्थन किया है। चौदहवे सर्ग मे अर्जुन द्वारा किरात

१ 'किरातार्जुनीयम्' १ ४४० ॥ २ 'किरातार्जुनीयम्, १ ३३ ॥
३ 'किरातार्जुनीयम' १ ४५ ॥ ४ 'किरातार्जुनीयम' १ ४४ ॥
५ 'किरातार्जुनीयम' १ ३ ॥
६ स्फुटता न पदैरपाकृत न च न स्वीकृतमर्थगौरवम।
रचिता पृथगर्थता गिरा न च सामर्थ्यमपोहित क्वचित ॥ कि० २ २७ ॥

की बात का उत्तर देते हुए वे वाणी की विशेषता का निम्न प्रकार से वर्णन करते है—

कि० १४ ३—५ ॥

विविक्तवर्णाभरणा सुखश्रुति प्रसादयन्ती हृदयान्यपि द्विषाम् ।
प्रवर्तते नाकृतपुण्यकर्मणा प्रसन्नगम्भीरपदा सरस्वती ॥
भवन्ति ते सभ्यतमा विपश्चितां मनोगतं वाचि निवेशयन्ति ये ।
नयन्ति तेष्वप्युपपन्ननैपुणा गम्भीरमर्थं कतिचित्प्रकाशताम् ॥
स्तुवन्ति गुर्वीमभिधेयसम्पदं विशुद्धिमुक्तेरपरे विपश्चित ।
इति स्थितायां प्रतिपूरुषं रुचौ सुदुर्लभा सर्वमनोरमा गिर ॥

अर्थात वाणी के वर्ण स्पष्ट रूप से उच्चारित होने चाहिये। वे सुनने मे सुखकर होने चाहिये और शत्रुओ के भी हृदय को प्रसन्न करने वाले होने चाहिये। पदो मे स्वच्छता और गाम्भीर्य होना चाहिये। वे अर्थों को प्रकाशित करने वाले होने चाहिये। कुछ व्यक्ति वाच्यार्थ की गम्भीरता को अधिक श्रेष्ठ बताते है और कुछ शब्दसामर्थ्य की प्रशसा करते है। परन्तु उत्तम वाणी इन दोनो विशेषताओ से युक्त होती है। उत्तम काव्य वही होता है जो इन सब गुणो से सम्पन्न होकर मनोरम हो।

'किरातार्जुनीयम' मे भारवि ने इन सभी विशेषताओ को बनाये रखा है। शब्दो की सामर्थ्य के साथ उनकी वाच्यार्थ सम्पत्ति और अर्थगाम्भीर्य प्रशसा के योग्य है। इस काव्य के सम्वादो मे भारवि ने अपनी उक्तियो को वाणी के इन सभी गुणो से सम्भृत किया है। वे कम से कम शब्दो मे बहुत सरल ढग के साथ अधिक से अधिक अर्थों की अभिव्यञ्जना कर देते है। इन शब्दो मे कितनी मार्मिकता है, जबकि कुरुओ की राजसभा मे हुये अपमान की अग्नि से दग्ध द्रौपदी युधिष्ठिर से कहती है—

गुणानुरक्तामनुरक्तसाधन कुलाभिमानी कुलजां नराधिप ।
परैस्त्वदन्य क इवापहारयेन्मनोरमामात्मवधूमिव श्रियम् ॥

कि० १ ३१

अर्थात आपके अतिरिक्त और कौन ऐसा कुलाभिमानी राजा होगा, जो प्रेम वाली, कुलीन सुन्दर अपनी कुलवधू और राजलक्ष्मी का स्वय शत्रुओ द्वारा अपहरण करा दे।

संस्कृत के काव्यो के विकास में भारवि को यद्यपि कलापक्ष का प्रारम्भ करने वाला कहा जाता है, तथापि इनका काव्य आडम्बर युक्त और समास बहुल पदो द्वारा बहुत क्लिष्ट नही हो गया है। इनके काव्य की रीति को वदर्भी कहा जाना चाहिये, यद्यपि इनमे कालिदास के समान माधुर्यव्यञ्जक वर्णों की अधिकता नही है, जो वीर रस के काव्य के लिये अधिक उपयुक्त भी नही होती। तथापि अल्पसमास युक्त और समासरहित पदो की रचना का बाहुल्य होने से इनकी रीति वदर्भी ही है। द्रौपदी के निम्न ओजपूर्ण वचनो को निश्चय ही वैदर्भी नीति मे रखा जा सकता है।

पुरःसरा धामवता यशोधना सुदु सह प्राप्य निकारमीदृशम्।
भवादृशाश्चेदधिकुर्वते रति निराश्रया हन्त हता मनस्विता ॥

कि० १ ४३ ॥

परन्तु जिन स्थानो पर कवि ने शृङ्गार रस की अभिव्यञ्जना की है और प्रकृति का सुन्दर चित्रण किया है, वहा निश्चय ही माधुर्यव्यञ्जक वर्णों का प्रयोग है--

सवाता मुहुरनिलेन नीयमाने दिव्यस्त्रीजघनवरांशुके विवृत्तिम्।
पर्यस्यत्पृथुमणिमेखलांशुजाल स जज्ञे युतकमिवान्तरीयमूर्वी ॥

कि० ७ १४ ॥

परन्तु युद्ध के निम्न वर्णन मे निश्चय ही गौडी रीति का सौन्दर्य विद्यमान है--

जलौघसम्मूर्छनमूर्छितस्वन प्रसक्तविद्युल्लसितधितद्युति।
प्रशान्तमेव्य धतधूममण्डलो बभूव भूयानिव तत्र पावक ॥

कि० १६ ५९ ॥

(घ) रस की अभिव्यक्ति

'किरातार्जुनीयम' मे वीर रस की प्रधानता है। इसमे अन्य शृङ्गार आदि रसो का आयोजन अग रूप से किया गया है[1]। भारवि ने अर्थ के गाम्भीर्य की रक्षा करते हुए रसो का जो आयोजन किया है, वह सरल कार्य नही है। कृष्ण कवि ने इसी गुण के कारण भारवि के काव्य की प्रशसा की है--

१ शृङ्गारादिरसोऽङ्गमत्र विजयी वीर, प्रधानो रस। मल्लिनाथ ॥

प्रदेशवृत्यापि महान्तमर्थं प्रदर्शयन्ती रसमादधाना ।
सा भारवेः सत्पथदीपिकेव रम्याकृतिः कैरिव नोपजीव्या ॥

अर्थात महान् अर्थ को प्रकट करती हुई और रस को धारण करती हुई भारवि की रमणीय कृति उत्तम मार्ग को दिखाने वाले दीपक के समान किन कवियों के मार्ग का निदर्शन नहीं कर सकती ।

शारदातनय ने भी भारवि के काव्यों में विद्यमान भाव और रस की प्रशंसा की है—

तादात्म्यं भावरसयोः भारविः स्पष्टमूचिवान् ।

भारवि के काव्य में प्रधान रूप से वीर रस की अंग रूप से शृङ्गार आदि रसों की अभिव्यक्ति है । अंग रसों में भी शृङ्गार ही मुख्य रूप से है । वीर रस की अभिव्यक्ति काव्य के प्रथम सर्ग से ही प्रारम्भ हो जाती है, जबकि द्रौपदी युधिष्ठिर के उत्साह को प्रबोधित करने और शत्रुओं से प्रतिशोध लेने के लिये ओज से भरे हुये शब्दों को कहती है । द्रौपदी के निम्न शब्दों में —

अवन्ध्यकोपस्य विहन्तुरापदां भवन्ति वश्याः स्वयमेव देहिनः ।
अमर्षशून्येन जनस्य जन्तुना न जातहार्देन न विद्विषादरः ॥

वीर रस की निश्चय जागृति होती है । इसी प्रकार दूसरे सर्ग में भीम के वचनों में वीर रस की निश्चय अभिव्यक्ति है —

द्विरदानिव दिग्विभावितांश्चतुरस्तोयनिधीनिवायतः ।
प्रसहेत रणे तवानुजान् द्विषतां कः शतमन्युतेजसः ॥ कि० २ २३॥

अर्थात शत्रुओं में ऐसा कौन है, जो चार दिग्गजों और चार समुद्रों के समान, युद्धक्षेत्र में प्रस्थान करते हुये इन्द्र के समान तेजस्वी तुम्हारे छोटे भाइयों के पराक्रम को सहन कर सके ?

किरात और अर्जुन के युद्ध में कवि ने अर्जुन को आश्रय बनाकर वीर रस की उत्तम व्यञ्जना की है । जब किरात के साथ युद्ध करते हुये अर्जुन के सभी शस्त्र असफल हो गये और उसके द्वारा फेंके गये वृक्षों और शिलाओं के प्रहार भी विफल रहे, तब गंगा के प्रवाह को चीरते हुये मगर के समान अर्जुन ने शिव द्वारा फेंके गये बाणों को नदी के सम्मुख उपस्थित होकर सुवर्ण की चट्टान के समान शिव के वक्षस्थल पर भुजाओं से प्रहार किया—

उन्मज्ज मकर इवामरापगाया वेगेन प्रतिमुखमेत्य बाणनद्या ।
गाण्डीव कनकशिलानिभ भुजाभ्यामाजघ्ने विपमलोचनस्य वक्ष ॥

कि० १७ ६३ ॥

'किराताजु नीयम्' के आठवे, नौवे और दसवे सर्गों मे देवागनाओ के वन-विहार, जलक्रीडा, रतिकेलि और अर्जुन को लुभाने के प्रयत्नो का वर्णन करने मे कवि ने शृङ्गार रस की उत्तम अभिव्यञ्जना की है। परन्तु भारवि के ये शृङ्गार कालिदास और अश्वघोष के शृङ्गार के समान उदात्त और मर्यादित नही है। भारवि का शृङ्गार वर्णन विलासवृत्ति और कामुकता को उभारने वाला है। भारवि के परवर्ती कवियो मे इस अतिरञ्जित और अमर्यादित शृङ्गार की ओर प्रवृत्ति उत्तरोत्तर बढती गई है। भारवि के शृगार के कुछ उदाहरण यहा देना उचित होगा—

लोलदृष्टि वदन दयितायाश्चुम्बति प्रियतमे रभसेन ।
व्रीडया सह विनीवि नितम्बादशुक शिथिलतामुपपेदे ॥

कि० ६ ४७ ॥

प्रियतम द्वारा प्रियतमा के चञ्चल नेत्रो वाले मुख को जबरदस्ती चूमने पर नीवी के खुल जाने से लज्जा के साथ ही उनका वस्त्र भी नितम्ब से खुल गया।

अथवा—

व्यपोहितु लोचनतो मुखानिलरपारयन्त किल पुष्पज रज ।
पयोधरेणोरसि काचिदुन्मना प्रिय जघानोन्नतपीवरस्तनी ॥

कि० ८ १९ ॥

नेत्रो से फूलो के पराग को फूक मारकर उडाने से असमर्थ प्रियतम की छाती पर किसी उन्मत्त हुई ऊचे उठे हुये कठोर मोटे स्तनो वाली सुराङ्गना ने अपने स्तन से प्रहार किया।

अथवा—

अभिमुनि सहसा हृते परस्या घनमरुता जघनाशुकैकदेशे ।
चकितमवसनोरु सत्रपाया प्रतियुवतीरपि विस्मय निनाय ॥

कि० १०, ६५ ॥

तपस्वी अर्जुन के सम्मुख जाने पर वायु से जाघो के वस्त्रो के सहसा अपहृत हो जाने पर लज्जा करती हुई उस सुरागना की जाघो के निरावरण हो जाने पर दूसरी युवतिया भी आश्चर्य से चकित हो गई।

'किरातार्जुनीयम्' के आठवे, नौवे और दसवे सर्गों मे कवि ने शृङ्गार का जो चित्रण किया है, वह किसी एक कथानक का क्रमबद्ध प्रतीत न होकर मुक्तक शृगार वर्णना का समुदाय सा प्रतीत होता है। इनमे कोई कथानक का प्रवाह हो, ऐसा नही है, अपितु ये श्लोक नायक नायिकाओ की शृगार की विभिन्न अवस्थाओ के द्योतक हैं।

(ङ) प्रकृति चित्रण

भारवि ने अपने काव्य मे यद्यपि प्रकृति का बहुत सुदर वर्णन किया है, तथापि उसका प्रकृति चित्रण कालिदास के समान सवेदनशील नही है और उसको मानवता के साथ एकाग्रता नहीं होती। कालिदास की प्रकृति केवल उद्दीपन और आलम्बन ही नही है, अपितु वह पात्रो के साथ एकरूप हो जाती है। उसकी शकुन्तला वस्तुत प्रकृति का एक रूप है। उसका शृङ्गार करने के लिये प्रकृति स्वय वस्त्र आभूषण और शृङ्गार सामग्री उपहार मे देती है। उनकी विदा मे हरिणिया घास खाना छोड देती है और लताये आसू गिराती है। परन्तु भारवि प्रकृति के साथ अपने पात्रो की इतनी तादात्म्यता उत्पन्न नही कर पाये।

भारवि ने प्रकृति के आलम्बन और उद्दीपन दोनो रूपो का वर्णन किया है। महाकाव्यो की परम्परा के अनुरूप 'किरातार्जुनीयम्' के सूर्यास्त वर्णन, रात्रि वर्णन, प्रभात वर्णन, पर्वत वर्णन, छ ऋतुओ का वर्णन आदि प्रकृति के सभी अगो का वर्णन विशद रूप से है। परन्तु भारवि का यह प्रकृति वर्णन प्राय अलकारो के बोझ से बोझिल हो गया है। प्रकृति के स्वाभाविक चित्रणो मे यमक जैसे शब्दालकारो की योजना करके कवि ने उनकी मनोरमता को कम ही किया है।

यथा—

> कुररीगण कृतरवस्तरव कुसुमानता सकमल कमलम्।
> इह सिन्धवश्च वरणावरणा करिणा मुदे सनलदानलदा॥
>
> कि० ५ २५॥

यहा कुररी पक्षी बोल रहे है, वृक्ष फूलो से झुके है, जल कमलो से युक्त है, नदिया वृक्षो मे आवृत है जल से युक्त है और ताप को दूर करती है। वे हाथियो को प्रसन्न करती है।

इस पद्य मे प्रकृति के चित्रण की अपेक्षा यमक अलकार की शोभा ही अधिक है। तरव—तरव, कमल—कमलम् वरणा—वरणा, नलदा–नलदा मे वर्णसमूह की आवृति होकर यमक अलकार का चमत्कार प्रदर्शित किया गया है। तथापि अनेक स्थलो पर प्रकृति का चित्रण अलकृत होते हुये भी बहुत सुन्दर स्वाभाविक और मार्मिक है।

यथा—

विपाण्डु सव्यानमिवानिलोद्धत निरुधती सप्तपलाशज रज ।

अन विलोमीलितबाणचक्षुष सपुष्पहासा वनराजयोषित ॥

शुभ्र वर्ण के वायु से उडाये जाते हुये सप्तपर्ण के पराग को उत्तरीय के समान सभालती हुई निर्मल और खिले हुये बाण के वृक्षो रूप आखो वाली एव पुष्परूप हसी हसती हुई वनपक्तियो रूपी युवतियो को उसने देखा।

अथवा

उपति सस्य परिणामरम्यता नदीरनोद्धत्यमपङ्कता मही ।

नवगुण सप्रति सस्तवस्थिर तिरोहित प्रेम घनागमश्रिय ॥

कि० ४ २२ ॥

धान पक कर रमणीय प्रतीत होते है। नदी उद्धतता को छोडकर रमणीय हो गई है। पृथिवी कीचड से रहित हो गई है। शरद ऋतु ने अपने नवीन गुणो से वर्षा ऋतु की शोभा के पुराने दृढ प्रेम को भी तिरोहित कर दिया है।

निम्न पद्य मे गौओ के सायकाल के समय घर लौटने का अति मनोरम वर्णन है —

उपारता पश्चिमरात्रिगोचरादपारयन्त पतितु जवेन गाम् ।

तमुत्सुकाश्चक्रुरवेक्षणोत्सुक गवा गणा प्रस्नुतपीवरोधस ॥

अर्थात् रात्रि के पिछले प्रहर मे गोचर भूमि से लौटती हुई परन्तु तेजी से भूमि पर दौडने मे असमर्थ होती हुई मोटे थनो से दूध को बहाती हुई गौओ ने अर्जुन को देखने के लिये उत्सुक बना दिया।

निम्न पद्य मे कमलो के पराग के सौदर्य का वर्णन है—

उत्फुल्लस्थलनलिनीवनादमुष्मादुद्धूत सरसिजसम्भव पराग ।
वात्याभिर्वियति विवर्तित समन्तादाधत्ते कनकमयातपत्रलक्ष्मीम् ॥
कि० ५ ३९ ॥

स्थल कमल खिल रहे है, उनसे पराग बिखर रहा है, बवण्डर द्वारा ऊपर उडाया जाकर वह स्वर्णनिर्मित छत्र की शोभा को धारण कर रहा है।

भारवि का यह वर्णन और बवण्डर से उडते हुये पराग की स्वर्णमय आतपत्र से उपमा देना कवियो मे अति प्रसिद्ध हुआ है और इसने भारवि को आतपत्र भारवि की उपाधि प्रदान की।

वस्तुत भारवि का प्रकृति-चित्रण आलम्बन की अपेक्षा उद्दीपन अधिक है। सूर्योदय, सूर्यास्त, चन्द्रोदय, छ ऋतुओ का वर्णन आदि कवियो ने देवाङ्गनाओ द्वारा किय जाने वाले विलासो की मादकता मे वृद्धि करने के लिये किये हैं। उनका वर्णन इसीलिये है, कि उनसे कवि को उन्मादक वातावरण प्रस्तुत करने मे अधिक सफलता मिली है। छ ऋतुओ का अलग अलग आकाश और वन मे आविर्भाव अप्सराओ के आदेश से उन्मादक वातावरण के सजन के लिये ही होता है। वसन्त ऋतु के वर्णन मे—

श्वसनचलितपल्लवाधरोष्ठे नवनिहितेर्ष्यमिवावधूनयन्ती ।
मधुसुरभिणि षट्पदेन पुष्पे मुख इव शाललतावधूश्चुचुम्बे ॥
कि० १० ३४ ॥

मानो नवीन ईर्ष्या से मान करती हुई शाल लता रूपी वधू के वायु रूप श्वसन से कापते पल्लव रूप होठ वाले मकरन्द आदि से सुगन्धित पुष्प रूप मुख का भ्रमर ने चुम्बन किया।

(च) अलङ्कारो का आयोजन

भारवि ने काव्य मे अलकारो का आयोजन अत्यधिक निपुणता से किया है। कवि ने शब्दालकार और अर्थालकार दोनो का यथास्थान प्रयोग किया है। तथापि इस विधान मे भारवि पाण्डित्य प्रदर्शन के लोभ मे फस गये है। अनेक स्थलो पर उन्होने अतिक्लिष्ट यमक एव प्रहेलिकामय अलकारो की योजना की है। परन्तु उनके इस प्रकार के अलकार प्रकृति के और युद्ध के

चित्रणा म ही अधिक है। कवि जहाँ गम्भीर अर्थो म भरी वाणी का प्रयोग करते है, वहा उन्होने उपमा, अर्थान्तरन्यास आदि सरल और स्वाभाविक अर्थालकारो का ही अधिक प्रयोग किया है। निम्न पद्य म अर्थान्तरन्यास अलकार है—

तथाऽपि जिह्म न भवज्जिगीषया तनोति शुभ्र गुणसम्पदा यश ।
समुन्नय भूतिमनार्यसगमाद् वर विरोधो पि सम महात्मभि ॥
कि० १ ८ ॥

निम्न पद्य मे भारवि ने श्लेष से अनुप्राणित उपमा की योजना की है—

कथाप्रसगेन जनरुद हृतादनुस्मताखण्डलसूनुविक्रम ।
तवाभिधानाद व्यथते नतानन सुदु सहान्मन्त्रपदादिवोरग ॥
कि० १ २४ ॥

भारवि की अलकारो की योजना म पाण्डित्य प्रदशन की भावना का दशन हमको उनके चित्रालकारो से मिलता है। ये अलकार काव्य मे यद्यपि अनेक स्थलो पर है, तथापि पन्द्रहवे सग म इनका प्राचुय है। पन्द्रहवा सग वस्तुत कवि ने अलकारो की कारीगरी को ही प्रदर्शित करने के लिये रचा प्रतीत होता है। निम्न श्लोक म गोमूत्रिकाबन्ध का चमत्कार है—

वेत्रशाककुजे शलेऽलेशजेऽकुकशात्रवे ।
यात कि विदिशो जेतु तु जेशो दिवि कि तया ॥
कि० १५ १८ ॥

इस पद्य मे प्रत्येक पक्ति को उलटा या सीधा पढने से एक सा ही पढा जायेगा ।

निम्न पद्य म प्रत्येक पाद मे केवल एक वर्ण का प्रयोग है—

स सासि सासुसू सासो येयायेयाययायय ।
ललौ लीला ललोऽलोल शशीशशिशुशी शशन् ॥
कि० १५ ८ ॥

निम्न पद्य के चारो पदो मे प्रत्येक बार उन्ही पदो की आवृत्ति है, परन्तु उनका अर्थ भिन्न है—

विकाशमीयुजगतीशमागणा विकाशमीयुजगतीशमागणा ।
विकाशमीयुजगतीशमागणा विकाशमीयुजगतीशमागणा ।
कि० १५ ५२ ॥

निम्न पद्य मे केवल एक ही वर्ण का प्रयोग है—

न नोननुन्नो नुन्नोनो नाना नानानना ननु ।
नुन्नोऽनुन्नो ननुन्नेनो नानेना नुन्ननुन्ननुत् ॥ कि० १५ १४ ॥

(छ) छन्द विधान—

भारवि ने 'किरातार्जुनीयम्' मे लगभग १२ छन्दो का प्रयोग किया है। प्रथम सर्ग मे १ से ४४ तक वंशस्थ, ४५ मे पुष्पिताग्रा और ४६ मे मालिनी छन्द है।

भारवि के वंशस्थ छन्द की आलोचकों ने प्रशंसा की है। श्री क्षेमेन्द्र उसकी प्रशंसा मे कहते है—

वृत्तच्छत्रस्य सा कापि वंशस्थस्य विचित्रता ।
प्रतिभा भारवेर्येन सच्छायेनाधिकीकृता ॥

७ पूर्ववर्ती और परवर्ती कवियो के सन्दर्भ मे भारवि

संस्कृत काव्यो की धारा मे तीन मोड़ स्पष्ट रूप से देखे जा सकते है। पहला मोड़ 'रामायण' और महाभारत' का है। इनके रचयिता वाल्मीकि और व्यास है। इनको कवि की अपेक्षा महर्षि के नाम से अधिक जाना जाता है। इन काव्यो को भी काव्यो की अपेक्षा धार्मिक साहित्य के रूप मे अधिक आदर मिला है इन काव्यो मे काव्य सम्बन्धी प्रतिभा के महान्, उच्च, मोहक और रंगीन विस्तृत दर्शन तो होते ही है, साथ ही प्राचीन जनजीवन की भारतीय महापुरुषो की, उनके धर्म, संस्कृति और सभ्यता की शक्तिशाली झाकी भी मिलती है। इसके साथ ही यह भी माना जाता है कि ये काव्य कवियो ने अपने उस युग मे लिखे, जब कि उनके काव्यो के पात्र स्वयं भी जीवित थे वाल्मीकि को राम का और व्यास को युधिष्ठिर का समकालीन स्वीकार किया जाता है। इसीलिये उन काव्यो मे जीवन की सचित्र अभिव्यक्तिया अधिक स्वाभाविक है। यद्यपि उनमे काव्यत्व है, भावो और रसो का सम्भरण है, अलकारो की सजावट है, पात्रो के अतिशयोक्ति

से भरे हुये सौन्दय और वीरत्व का चित्रण है तो भी काव्य वास्तविक जीवन की अभिव्यक्ति करते है और उनमे वर्णित घटनाये सत्य प्रतीत होती हैं। यद्यपि वे काव्य राजवशो के चरित्र को प्रस्तुत करते है, तो भी उनमे सामान्य जनो के चित्रणो के साथ ही राष्ट्रीय एव सामाजिक विशेषताओ की अभिव्यक्ति भी है। तद्यपि उस युग मे भारतवर्ष छोटे स्वाधीन राज्यो मे बटा हुआ था, तो भी वे राज्य राष्ट्र नही थे। उन ऋषियो की दृष्टि मे सास्कृतिक दृष्टि से एकता मे घिरे हुये सभी राज्यो का समूह ही राष्ट्र था और उनको राजनीतिक दृष्टि से एकता मे बाधना कवियो को अच्छा प्रतीत होता था। 'जननी जन्मभूमिश्च स्वर्गादपि गरीयसी' जैसी देशभक्ति की भावनाये भी 'रामायण' जसे काव्यो की ही देन है।

न केवल भावनात्मक और सास्कृतिक दृष्टि से ही ये उच्च है, अपितु कविता के कौशल के विधान से भी ये कला के उच्च शिखर पर पहुचे हुये है। इन काव्यो मे कथानक का सगठन सशक्त और सुगठित है तथा भाषा का प्रवाह सरल और प्रसाद गुण युक्त है। अलकारो का इनमे स्वाभाविक सौन्दय है और विभिन्न रसो की सरस और स्वाभाविक अभिव्यक्ति है। कवियो ने इनमे अपना पाण्डित्य का दशन करके क्लिष्टता उत्पन्न नही की। उन्होने काव्य की सजावट के लिये उपमा, रूपक, उत्प्रेक्षा, अर्थान्तर यास, स्वभावोक्ति आदि सरल और स्वाभाविक अलकारो का ही प्रयोग किया है। इनके छन्द भी सरल और गेय है। यही कारण है कि इन काव्यो का भारतीय जनजीवन मे बहुत अधिक महत्वपूर्ण स्थान रहा। ये काव्य केवल पण्डितो के लिये ही नही थे, अपितु सामान्य जन की सम्पत्ति बन गये थे। यही कारण है कि परवर्ती कवियो के लिये काव्य उपजीव्य हो गये और इनके आधार को लेकर उन्होने अपनी रचनाओ का प्रणयन किया।

काव्यधारा का दूसरा मोड कालिदास और अश्वघोष जसे महाकवियो की रचनाओ मे मिलता है। 'कुमारसम्भव' 'रघुवश', मेघदूत' अभिज्ञानशाकुन्तलम्' "सौन्दरनन्द' 'बुद्धचरित' आदि काव्यो मे इस नई धारा के दशन होते है। ये लेखक ऋषि नही है अपितु महाकवि है। इनके काव्यो मे 'रामायण' और महाभारत का जनजीवन नही है, परन्तु इन्होने काव्यो की शैली का

और अधिक परिष्कार किया है। कथानक के सगठन, भाषा का सहज प्रवाह, भावा की सुन्दर अभिव्यक्ति और कला के आदर्श का इनमे निश्चय ही परिष्कार हुआ है। दूसरे शब्दो मे हम यह सकते है कि इन कृतियो की रचनाओ मे काव्यत्व का अधिक विकास हुआ है। वस्तुत कालिदास के काव्यो मे हमको सस्कृत काव्यो की भावात्मकता और कला के चरम परिष्कार और सर्वोत्कृष्टता के दर्शन होते है। इसमे सभी कवियो और आलोचको द्वारा प्रशसित होकर वे राष्ट्रीय कविता के प्रतीक बन गये। कालिदास के बिना सस्कृत काव्यो का समूह निर्जीव सा प्रतीत होता है।

कालिदास के काव्यो मे कथावस्तु के सगठन, पात्रो के चरित चित्रण, भावो की अभिव्यक्ति और भाषा के सौन्दर्य का समुचित सन्तुलन हुआ है। इसने उनके काव्यो को भावी कवियो के लिये आदर्श बना दिया। यद्यपि कालिदास के काव्यो मे काव्यशास्त्रीय नियमो का अन्धानुसरण नही है, तथापि वे शब्दो के उचित चयन, भावो के योग्य भाषा, अलकारो के सरल और स्वाभाविक समावेश एव सरस यथा रोचक कल्पनाओ के कारण रस की सर्जना करते है। उनके काव्यो मे भावा और कला का उचित समन्वय है, जीवन, सरस सगति है और इसके साथ ही राष्ट्रीय सस्कृति का आदर्श भी है। कालिदास काव्य के बाह्य रूप की अपेक्षा आन्तरिक भावो की अभिव्यक्ति को अधिक महत्त्व देते है।

कालिदास के काव्यो मे पात्रो को आदर्श रूप से प्रस्तुत करने के कार नायकपक्षीय पात्रो के ही गुण ही दिखाये गये है। परन्तु रामायण और म भारत मे उनके गुणो के साथ दोषो को बताने मे भी सकोच नही [illegible] गया। राम जहाँ मर्यादा पुरुषोत्तम है, वीर है, गम्भीर है और सबको दिखाने वाले है वे भी अपने दुखो मे धैर्य भी छोडकर अत्यधिक वि हो जाते है। सीता का विछोह उनकी वीरता को विलुप्त कर देता युधिष्ठिर सभी गुणो से सम्पन्न होते हुये भी द्यूत के व्यसनी है और द्यूतक्री करते हुये उचित और अनुचित को भूल कर अपने भाइयो तथा पत्नी को दाव पर लगा देते है। नायक के इस दोष के लिये कवि उसे क्षमा नह करता।

इसके विपरीत कालिदास के नायक परीक्षा पात्र दोषों से रहित गुणों मे सम्पन्न है। कवि उनके दोषों को अपने काव्य कौशल से छिपा देता है। निर्दोष पतिव्रता सीता के परित्याग करने वाले राम को आक्षिप्त करने के लिये उनके पास एक भी शब्द नहीं था। इसका कारण सम्भवत यह रहा होगा कि उस युग मे राम अवतार के रूप मे प्रसिद्ध हो चुके थे और पुरुष रूप मे अवतीर्ण भगवान् मे दोषों का उदभावना लोकमानस की भावना के विपरीत होती। परन्तु उनके अन्य काव्यों मे यही प्रवृत्ति दिखाई देती है। शकुन्तला का परित्याग करने मे दोषी दुष्यन्त के अपराध को उन्होंने दुर्वासा के शाप की कल्पना करके छिपाया।

कालिदास द्वारा नायक मे किसी दोष का न दिखाना परवर्ती कवियों के लिये स्वीकरणीय आदर्श बन गया और काव्यशास्त्रों मे यह नियम बना कि कवि को नायक मे दोषों की उद्भावना नहीं करनी चाहिये। यदि उसमे कोई दोष हो तो उसको अन्य प्रकार से इस प्रकार लिखना चाहिये कि दोष प्रतीत न हो[1]।

कालिदास और अश्वघोष के बाद संस्कृत काव्य की धारा को भारवि ने एक और मोड दिया। भारवि के पास अपने से पहले के कवियों वाल्मीकि, व्यास, कालिदास अश्वघोष आदि की समृद्ध परम्परा विरासत के रूप मे उपलब्ध थी। उन्होंने परम्परा को ग्रहण करके भी एक नया मोड दिया। अब तक कविताओं मे भावपक्ष और कलापक्ष का उचित संतुलन था और उसमे कवियों ने भावपक्ष को अधिक महत्त्व दिया था। परन्तु भारवि ने अपने काव्य मे कलापक्ष को और पाण्डित्य प्रदर्शन की प्रवृत्ति को अधिक महत्त्व दिया। यद्यपि भारवि जहा काव्य की वाणी की विशेषताओं को बताते है वहा पदों के अर्थों के गौरव को अधिक महत्त्व देते है, तथापि व्यवहार मे वे शब्दों की क्रीडा, चित्रालंकारों के प्रयोग और पाण्डित्य प्रदर्शन के मोह मे फस जाते है। काव्य के प्रारम्भ मे इस प्रकार की प्रवृत्ति न होने पर भी काव्य के प्रवाह के आगे बढने के साथ उनकी यह प्रवृत्ति बढती जाती है। "किरातार्जु-

१ यत्स्यादनुचित वस्तु नायकस्य रसस्य वा।
विरुद्ध तत्परित्याज्य मन्यथा वा प्रकल्पयेत्॥ साहित्यदर्पण ६ ५०।

नीयम ' के पन्द्रहवं सर्ग में यह प्रवृत्ति चरम अवस्था तक पहुंचती हुई दिखाई देती है।

कालिदास के समान भारवि की रीति वदर्भी है। परन्तु यह इस प्रकार की वदर्भी नहीं है, जसी कालिदास की है। भारवि ने लम्बे समासो और क्लिष्ट पदावली का अधिक प्रयोग नहीं किया, तथापि उनके पदों के अर्थों में वह लालित्य, सरलता और स्पष्टता नहीं है, जो कालिदास के काव्यों में दिखाई देती है। इसीलिये मल्लिनाथ ने भारवि के काव्य को नारिकेलसम्मित कहा। इसके कठोर आवरण को परिश्रम से तोडकर ही अन्दर का मीठा सरस फल चखा जा सकता है।

भारवि से पूर्ववर्ती काव्यों में विभिन्न प्रकार के वर्णनों के होने पर भी उनकी कथा–धारा मन्थर गति से अविच्छिन्न रूप से चलती जाती थी। उसमें अवरोध बहुत कम था। परन्तु भारवि ने नवीन पद्धति का प्रचलन किया। उन्होंने एक छोटे से कथानक को बड़े महाकाव्य के रूप में फैला दिया। इसमें कथा का अंश तो कम हो गया, परन्तु वर्णनों का प्राचुर्य हुआ। इस कारण कथा का अवरोध तो हुआ ही, वर्णनों की अधिकता से उनमें पुनरावृत्ति का दोष भी अनेक स्थानों पर उत्पन्न हुआ। प्रबन्ध काव्यों में कथा का प्रवाह का बार बार अवरोध उसकी प्रभावोत्पादकता को कम कर देता है।

भारवि से पूर्व के कवियों में हमको अति विनीत प्रकृति के दर्शन होते हैं। रघुवंश को प्रारम्भ करने वाले महाकवि कालिदास में चरम विनयशीलता है। वे कहते हैं कि कहां तो महान् सूर्यवंश और कहां मेरी छोटी सी तुच्छ बुद्धि। मैं छोटी सी नौका से विशाल समुद्र को पार करने के लिये उद्यत हुआ हूँ। यश को चाहने वाला मैं मूर्ख कवि सबके उपहास का पात्र बनूंगा। मेरा प्रयत्न ऐसा ही है, जैसे एक बौना हाथों को उठाकर ऊँचे फल को प्राप्त

१ क्व सूर्यवंशो प्रभव क्व चाल्पविषया मति ।
तितीर्षु दुस्तर मोहादुडुपेनास्मि सागरम् ॥
मन्द कवि यश प्रार्थी गमिष्याम्युपहास्यताम् ।
प्राशुलभ्ये फले लोभादुद्बाहुरिव वामन ॥ रघुवंश १ २–३ ॥

करना चाहता है परन्तु भारवि में हमें इस विनीत प्रकृति के दर्शन नहीं होते। वे अपने काव्य की वाणी के गुणों को दृढ शब्दों में घोषित करते हैं कि इसमें पदों और अर्थों की गुरुता है। यह गर्वीली प्रकृति कवियों में उत्तरोत्तर बढ़ती गई है। श्रीहर्ष में यह प्रकृति यहाँ तक पहुँची कि उन्होंने अपने काव्य में घोषणा की कि उनके काव्य को हर कोई नहीं पढ़ सकता। इसमें बड़े प्रयत्न से गाँठें लगा दी गई हैं। जिन्होंने श्रद्धा के साथ गुरू की सेवा की हो वे ही इस काव्य के रस का आस्वादन कर सकते हैं[1]।

भारवि से पहले के काव्यों में काव्य की सफलता के लिये ईश्वर की वन्दना को अवश्य स्थान दिया जाता था। रघुवंश को प्रारम्भ करते हुये कालिदास शिव और पार्वती की वन्दना करते हैं। कुमारसम्भव को यद्यपि कथावस्तु से प्रारम्भ होने वाला काव्य कहा जाता है, तथापि उसमें पहले अनेक पद्यों में हिमालय की वन्दना की गई है। हिमालय को आर्य विचारधारा के अनुसार देवरूप समझा जाता है। भारवि सीधा विषय वस्तु को लेकर काव्य को प्रारम्भ कर देते हैं। महाकाव्य के लक्षण में दण्डी का यह कथन 'आशीर्नमस्क्रियावस्तुनिर्देशो वापि तन्मुखम्'[2] अर्थात्, महाकाव्य का प्रारम्भ आशीर्वाद और नमस्कार के अतिरिक्त कथावस्तु का निर्देश करके भी किया जा सकता है। सम्भवतः यह दण्डी के काव्य का अवलोकन करके ही हुआ होगा। भारवि की इस पद्धति का अनुसरण संस्कृत के अन्य महाकाव्यकारों ने भी किया है। यद्यपि इनमें प्रकारान्तर से मंगलाचरण भी समालोचकों ने सिद्ध किया है। भारवि और माघ के काव्य इस दृष्टि से अधिक समान हैं। दोनों ही श्री शब्द से प्रारम्भ होते हैं। इस शब्द को मंगल सूचक समझा जाता है। 'नैषधीयचरितम्' का प्रारम्भ राजा नल के नाम से किया गया है, इसका कीर्तन करना कलि को विनाश करने वाला समझा जाता है।

---

१ ग्रन्थग्रन्थिरिह क्वचित्क्वचिदपि न्यस्ता प्रयत्नान्मया
प्राज्ञम्मन्यमना हठेन पठिती माऽस्मिन् खल खेलतु।
श्रद्धाराद्धगुरुश्लथीकृतदृढग्रन्थिः समासादय—
त्वेतत्काव्यरसोर्मिमज्जनसुखव्यासज्जनं पण्डितः ॥ नैषध० २२ १५२ ॥

२ काव्यादर्श १ १४ ॥

भारवि ने काव्या मे भावपक्ष के साथ साथ कलापक्ष के महत्त्व को भी बढाया। उन्होने पाण्डित्यप्रदशन को भी प्रश्रय दिया। काव्यात्मक प्रतिभा की दृष्टि से इस प्रवृत्ति को आधुनिक समालोचक अधिक ग्राह्य नही समझते। इसलिये आधुनिक समालोचको के मत मे भारवि सस्कृत महाकाव्यो मे ह्रास के युग को प्रारम्भ करने वाले है।

भारवि की इस प्रवृत्ति का प्रभाव सस्कृत के परवर्ती कवियो पर निश्चित रूप से पडा है। बृहत्त्रयी के अन्य दोनो काव्या—माघ के 'शिशुपालवध' और श्रीहर्ष के 'नैषधीयचरितम्' पर भारवि की कृत्रिम और पाण्डित्यप्रदशन की शैली स्पष्ट रूप से देखी जा सकती है और वे इस विषय म भारवि से कही आगे बढ गये है। भारवि के बाद काव्यो मे शाब्दिक क्रीडाओ अलकारिक चमत्कारो अनेकार्थक शब्दो के प्रयोगो, लम्बे लम्बे वर्णनो आदि के द्वारा पाण्डित्य प्रदशन की प्रवृत्ति बढती ही गई है। महाकवि श्रीहर्ष मे तो यह प्रवृत्ति यहा तक बढी कि वे गवपूर्वक कहते है कि उन्होने अपने काव्य मे प्रयत्न पूवक ग्रन्थियो को निहित किया है। अपने आपको वृथा ही बुद्धिमान् समझने वाले खल इनमे न खेल। इस प्रकार भारवि के पश्चात् काव्या म भावपक्ष निबल होकर कलापक्ष अधिक प्रबल हो गया। केवल महाकाव्यो की रचना म नही अपितु अन्य प्रकार की कविताओ मे भी शास्त्रीय ज्ञान और पाण्डित्य के प्रदर्शन की प्रवृत्ति बढी ही है।

भारवि ने कलापक्ष को महत्त्व देते हुये भी भावपक्ष के महत्त्व को कम नही माना अलकृत काव्य शैली को अपना कर भी वे रसाभिव्यञ्जना से दूर नही होते। इस सम्बन्ध मे वे कालिदास का ही अनुवतन करते है। उनके काव्यो मे शब्दो की गुरुता, अर्थों का गौरव, अलकारो की समुचित योजना, कल्पनाओ का उच्च विकास, वर्णनो की सजीवता, शास्त्रो का ज्ञान, रसो की अभिव्यञ्जना सभी तत्त्व, उपस्थित है और उन्होने इन सबका उचित सन्तुलन किया है।

भारवि का सबसे अधिक प्रभाव माघ की रचना 'शिशुपालवध' म देखा जा सकता है, भारवि के समान माघ ने भी अपनी कथावस्तु को 'महाभारत' से लिया है। वे काव्य को कथावस्तु के निर्देश के साथ 'श्री' शब्द से प्रारम्भ करते है। भारवि के समान वे राजनीतिक सवाद, प्रकृति के विविध चित्रण,

विविध छन्दों की रचना, चित्रकाव्य का निर्माण आदि में रुचि लेते हैं। परन्तु भारवि के समान वे शब्द और अर्थ की गुरुता को भी किसी सीमा तक बनाये रखते हैं। यद्यपि भारवि की अपेक्षा पाण्डित्य प्रदर्शन की ओर उनकी प्रवृत्ति अधिक बढ़ी है।

उन परवर्ती कवियों में भावपक्ष और कलापक्ष का सन्तुलन बना नहीं रह सका। उस युग की प्रवृत्ति ही इस प्रकार की हो गई थी कि कविता में भावों की प्रवणता की अपेक्षा पाण्डित्य प्रदर्शन का ही अधिक आदर था। इसलिये बृहत्त्रयी के तीनों काव्यों की तुलना करते हुये एक आलोचक ने यह वचन कहा—

तावद् भा भारवेः भाति यावन् माघस्य नोदयः ।
उदिते नैषधे काव्ये क्व माघः क्व च भारविः ॥

अर्थात् भारवि की कान्ति उसी समय तक है, जब तक माघ का उदय नहीं होता। किन्तु नैषध काव्य का उदय होने पर कहाँ माघ रहता है और कहाँ भारवि रहता है?

८ 'किरातार्जुनीयम्' की प्राचीन टीकायें

भारवि के अर्थगौरव ने विद्वानों को अपनी ओर आकृष्ट किया और 'किरातार्जुनीयम्' की व्याख्या करने के लिये अनेक टीकायें लिखी गई। श्री कृष्णमाचारी ने अपने संस्कृत साहित्य के इतिहास में किरातार्जुनीयम् की ३८ टीकाओं का उल्लेख किया। परन्तु इस समय मुख्य रूप से दो टीकायें उपलब्ध होती हैं—(१) मल्लिनाथ की घण्टापथ टीका और (२) चित्रभानु की शब्दार्थ दीपिका टीका। इन दोनों में मल्लिनाथ की घण्टापथ टीका अधिक प्रचलित है। मल्लिनाथ की टीका पूरे 'किरातार्जुनीयम्' पर है परन्तु चित्रभानु की टीका केवल पहले तीन सर्गों पर उपलब्ध होती है।

मल्लिनाथ

संस्कृत साहित्य में टीकाकारों के रूप में मल्लिनाथ बहुत प्रसिद्ध हैं। आपने 'किरातार्जुनीयम्' के अतिरिक्त 'मेघदूत', 'रघुवंश', 'कुमारसम्भव', 'शिशुपालवध', 'नैषधीयचरितम्', 'भट्टिकाव्य', 'तार्किकरक्षा', 'नलोदय', 'प्रशस्तपादभाष्य', और 'लघुशब्देन्दुशेखर', पर टीकायें लिखी हैं। उनकी

टीकाओं को देखने से विदित होता है कि वे व्याकरण, कोष, दर्शन और पुराणों के प्रकाण्ड पण्डित थे। इन शास्त्रों के अध्ययन का आपने अपनी टीकाओं में यथास्थान प्रयोग किया है।

मल्लिनाथ काश्यप गोत्र में उत्पन्न हुये तेलगू ब्राह्मण थे। इनके वंश की उपाधि कोलाचल थी। विद्वत्ता के कारण इनको महामहोपाध्याय और सूरी की उपाधियां प्राप्त हुई थीं। इसी प्रकार वे महामहोपाध्याय कोलाचल मल्लिनाथ सूरी कहलाते थे।

मल्लिनाथ के पितामह का नाम मल्लिनाथ और पिता का नाम कपर्दिन् था। इनके दो पुत्र थे—पेड्डिभट्ट और कुमारस्वामिन्। कुमारस्वामिन् भी प्रसिद्ध टीकाकार हुये। उन्होंने काव्यशास्त्र के प्रसिद्ध ग्रन्थ 'प्रतापरुद्रीय' पर टीका लिखी थी।

मल्लिनाथ चौदहवीं शताब्दी के अन्त और पन्द्रहवीं शताब्दी के प्रारम्भ में हुये थे। रेचड वंश के राजा सर्वज्ञ भूपालसिंह ने उनका कनकाभिषेक कराया था। काञ्ची के निकट प्राप्य एक अभिलेख के अनुसार विजय नगर के राजा देवराज प्रथम ने उनको वैश्य और व्यापारी शब्दों के निर्णय के लिये बुलवाया था। इस निर्णय की पाण्डुलिपि सुरक्षित है और उसके अनुसार उसका समय १४००—१४१४ ई० होता है।

मल्लिनाथ को अपनी विद्या पर गर्व था। उन्होंने अनेक शास्त्रों का अध्ययन किया था। 'किरातार्जुनीयम्' की टीका के प्रारम्भ में वे अपने विषय में लिखते हैं—

> वाणीं काणभुजीमजीगणदवाशासीच्च वैयासकी—
> मन्तस्तन्त्रमरंस्त पन्नगगवीगुम्फेषु चाजागरीत्।
> वाचामाचकलद्रहस्यमखिलं यश्चाक्षपादस्फुरां
> लोकेऽभूद्यदुपज्ञमेव विदुषां सौजन्यजन्यं यशः॥
> मल्लिनाथकविः सोऽयं महामहोपाध्यायशब्दभाक्।
> तत्किरातार्जुनीयाख्यं काव्यं व्याख्यातुमिच्छति॥

इसके साथ ही वे लिखते हैं कि अर्थगाम्भीर्य की दृष्टि से 'किरातार्जुनीयम्' महत्त्वपूर्ण है। सामान्य पाठक के लिये इसका अर्थ समझ पाना कठिन है।

पाठको को इस काव्य मे सुखपूवक प्रवेश कराने के लिये मल्लिनाथ ने इसके पदा की व्याख्या की। भारवि काव्य नारिकेल के फल के समान है, जो ऊपर से कठोर आवरण स ढका हुआ है, परन्तु भीतर से रसभरा तथा स्वादिष्ट है।

मल्लिनाथ को धन्यवाद है जो उन्होने इस कठोर आवरण को हटाकर सहृदयो को इस स्वादिष्ट फल के रस के आस्वादन का अवसर दिया।

चित्रभानु

'किरातार्जुनीयम्' के दूसरे प्रसिद्ध टीकाकार चित्रभानु है। उनकी टीका सम्पूर्ण काव्य पर नही है, अपितु केवल पहले तीन सर्गों पर है। इसका प्रकाशक त्रिवेन्द्रम सस्कृत सीरिज की तिरसठवी सख्या म हुआ है। इसका सम्पादन महामहोपाध्याय टी० गणपति शास्त्री ने किया है। इस टीका का नाम शब्दार्थदीपिका है। तीन सर्गों की टीका होने के कारण इसको 'त्रीसागरिका' भी कहते हैं। चित्रभानु ने इस टीका के द्वारा भारवि के काव्य के अध्ययन और रसास्वादन का माग प्रशस्त किया है। उन्होने सारे ग्रन्थ पर अपने आप टीका न लिखकर सहृदय पाठको को अवसर दिया है कि वे उनके माग से परिचित होकर स्वय ही काव्य के रस का आस्वादन करे। उन्होने लिखा है—

स्फुरन् मनाग् भारविभारतीगत मनोरम वस्तु गभीरमद्भुतम्।
अपुष्कलो लक्षणलक्ष्यगोचर श्रमश्च वाचालतर करोति माम्॥

मल्लिनाथ और चित्रभानु की टीका मे बहुत अन्तर है। मल्लिनाथ ने काव्य की सामान्य व्याख्या की है। उनके द्वारा की गई व्याख्या सम्पूर्ण काव्य की होने के कारण उसका कलेवर बहुत विस्तृत हो गया था और लम्बी व्याख्या करने के लिये उनके पास स्थान नही था। परन्तु चित्रभानु ने केवल तीन सर्गों की व्याख्या की है और उसने प्रत्येक पद के मार्मिक अर्थ को स्पष्ट किया है। उन्होने प्रत्येक शब्द कारक, प्रकृति प्रत्यय, लकार के प्रयोग, परस्मैपद आत्मनेपद के प्रयोग आदि का सूक्ष्म विवेचन करके कवि की वाणी के मर्म तक पहुचने मे पाठको की सहायता की। इस दृष्टि से चित्रभानु की व्याख्या मल्लिनाथ की व्याख्या की अपेक्षा अधिक गम्भीर और विशद है।

'किरातार्जुनीयम्' का प्रथम सर्ग

'किरातार्जुनीयम्' महाकाव्य भारवि की एकमात्र रचना उपलब्ध है और इस एक रचना ने ही उनको कवियों की सबसे आगे की पंक्ति में स्थान दे दिया है। काव्य का प्रथम सर्ग भारवि की कविता का सबसे श्रेष्ठ उदाहरण है। इसमें भारवि की काव्यप्रतिभा, वर्णन कौशल, शब्दार्थगौरव, राजनीतिक ज्ञान आदि गुण अभिव्यञ्जित होते हैं। इसलिये प्रथम सर्ग पर कुछ विस्तृत विचार प्रकट करना अधिक उपयुक्त होगा। प्रथम सर्ग में भारवि ने दो घटनाओं का वर्णन किया है—वनेचर द्वारा युधिष्ठिर को दुर्योधन के समाचार देना और द्रौपदी द्वारा युधिष्ठिर के क्रोध को उभारने का प्रयत्न करना—

(क) वनेचर द्वारा युधिष्ठिर को प्रदत्त सूचनायें

द्वैतवन में रहते हुए युधिष्ठिर ने दुर्योधन के विचारों और कार्यों के सम्बन्ध में समाचारों को जानने के लिये एक वनेचर को गुप्तचर के रूप में नियुक्त किया। वह ब्रह्मचारी के वेष में कुरुदेश में घूमता रहा और वहां के सारे वृत्तान्तों को जान कर द्वैतवन में युधिष्ठिर के पास आया। राजा को प्रणाम करके उसने स्पष्ट शब्दों में दुर्योधन की नीतियों, कार्यों और इरादों के सम्बन्ध में इस प्रकार कहा—

राजन्! आपसे जुए में राज्य को जीत कर भी आपके वन में रहने पर भी दुर्योधन आपसे सदा आशंकित रहता है। अब वह नीति के मार्ग का प्रयोग करके उस राज्य को सुदृढ करने में लगा हुआ है। इन्द्रियों को वश में करके वह सेवकों और सामन्तों को अपने प्रति अनुरक्त बना रहा है और प्रजा के हितकारी कार्यों को कर रहा है।

दुर्योधन ने काम, क्रोध, लोभ, मोह, मद तथा मत्सर इन छः शत्रुओं को जीत लिया है। प्रशासन का संचालन करने के लिये वह नीति और पराक्रम दोनों का प्रयोग करता है सेवकों और बन्धुओं को वह सदा प्रसन्न करता है। धर्म, अर्थ और काम इन पुरुषार्थों को सिद्ध करने के लिये वह सदा उचित साधनों का प्रयोग करता है। साम, दाम दण्ड और भेद इन चारों उपायों का उसने सफलता के साथ प्रयोग किया है। वह गुणी जनों का आदर करता है और उनको प्रभूत मात्रा में उपहार देता रहता है। उसके अनुयायी उससे

प्रभूत धन प्राप्त करके उसके कृतज्ञ हैं। उसके प्रशासन में पक्षपात नहीं है। वह समदर्शी होकर दण्ड का प्रयोग करके धर्म की रक्षा करता है।

राजन्! सामन्त राजा प्रभूत उपहारों को देकर दुर्योधन के कोष में निरन्तर वृद्धि करते हैं। उनसे अपने आदेश का पालन कराने के लिये उसको बल का प्रयोग करने की आवश्यकता नहीं होती। दुर्योधन के गुणों के कारण प्रसन्नता से उसके आदेश का पालन स्वयं ही करते हैं। दुर्योधन ने शक्तिशाली धनुर्धारी योद्धाओं को संगृहीत किया है। वे ओजस्वी और अभिमानी हैं। युद्धों में उन्होंने यश प्राप्त किया है। दुर्योधन से वे मान और धन प्राप्त करते हैं, इसलिये उनका तोड़ा नहीं जा सकता। प्राणों को देकर भी वे दुर्योधन का इष्ट करेंगे।

प्रजा का रञ्जन दुर्योधन का इष्ट है। उसने सिंचाई के लिये नहर आदि साधनों का प्रबन्ध किया है। इसलिये कुरुदेश के किसान केवल वर्षा पर ही निर्भर नहीं हैं। उनके खेतों में प्रभूत अन्न होता है। इससे वह राज्य यज्ञों से सम्पन्न हो गया है। दुर्योधन धार्मिक अनुष्ठानों की ओर से भी उदासीन नहीं है। दुःशासन को युवराज बनाकर वह यज्ञों का अनुष्ठान कर रहा है।

राजन्! इस प्रकार इतने बड़े राज्य का स्वामी होकर और प्रशासन को सुदृढ़ करके भी वह आपके भय से बेचैन रहता है। अर्जुन के पराक्रम का स्मरण करके उसका हृदय सदा व्यथित होता रहता है। इसके लिये वह आप सब भाइयों को मारने की योजनाएं बना रहा है। अब इस सम्बन्ध में आपको शीघ्र से शीघ्र उचित प्रतिकार करना चाहिये।

(ख) द्रौपदी द्वारा युधिष्ठिर को उद्बोधन—

वनेचर द्वारा लाये गये समाचार को सुनकर युधिष्ठिर ने उसको यथोचित पारितोषिक दिया। उसके चले जाने पर वे द्रौपदी के पास गये। उस समय उसके चारों छोटे भाई भी वहां बैठे हुये थे। युधिष्ठिर से दुर्योधन की सफलता को सुनकर द्रौपदी अपने क्रोध पर नियन्त्रण न रख सकी। वह क्रोध को भड़काने वाले निम्न वाक्यों को कहने लगी—

यद्यपि मुझ नारी का आपको उपदेश देना आपके प्रति आक्षेप ही है, तथापि मुझ पर तो विपत्तियां आई हैं, उन्हीं से बाधित होकर मैं इस प्रकार

कह रही हूँ। जिस राज्य को इन्द्र के समान पराक्रमी आपके पूवज चिरकाल तक धारण करते रहे, उसे आपने अपने ही दोष से गवा दिया। वे व्यक्ति मूख होते हैं, जो कपटी शत्रुओ के प्रति कपट का आचरण नही करते। आप जसा कुलाभिमानी ससार म और कौन हो सकता ह, जो साधन सम्पन्न होने पर भी कुलपरम्परा से आई राजलक्ष्मी को और प्रेम करने वाली सुदर कुल वधू को स्वय ही शत्रुओ से अपहृत करा दे। हे मनुष्या मे देवता! आश्चय है कि राजा होकर भी इस प्रकार का निन्दनीय जीवन व्यतीत करते हुए आपका हृदय क्रोध से जल नही जाता। सफल क्रोध करने वाले व्यक्ति सबको अनायास वश मे कर लेत हे। किन्तु जो क्रोध नही कर सकता, मित्र उसका आदर नही करते और शत्रु भी उसका भय नही खाते।

देखिये आपके भाइयो की कसी दुदशा ह। जो भीम सदा लाल चन्दन का लेप करता था, वह धूलि से घूसरित हो रहा है। जिस अजुन ने अनेको देशा को जीतकर आपको प्रभूत धन दिया था, वह वल्कल वस्त्रो का सचय कर रहा है। वन की कठोर भूमि पर सोने से नकुल और सहदेव का स्वरूप बिगड गया है।

आपकी बुद्धि को मै नही जानती। परन्तु आपकी आपत्तियो को देखकर मेरे मन मे बहुत पीडा होती है। कहा तो प्रसादो मे बहुमूल्य शय्याओ पर सोये हुये आपको जगाने के लिये मगल गान गाये जाते थे और कहा अब कुशसकुल वनभूमि मे सोये आप गीदडियो की रुदन ध्वनि से जागते हे। कहा आप ब्राह्मणो को भोजन कराकर नाना प्रकार के स्वादिष्ट और पौष्टिक भोजन किया करते थे और कहा अब वन्य फल खाकर कृश हो रहे हैं। कहा मणिजटित चौकी पर रखे आपके चरणो मे राजा प्रणाम किया करते थे और कहा अब वनो मे उन्ही चरणो मे नोकीली कुशाये चभती है।

मुझे पीडा इसलिये भी अधिक होती है कि ये सब आपत्तिया शत्रु द्वारा उत्पन्न की गयी है और आपने इन्हे कायरता वश स्वीकार कर लिया है। पराक्रम को प्रदर्शित करके हार जाना भी अच्छा है। इसलिए हे राजन्! शान्ति को छोडकर तेजस्विता प्रकट करते हुये आप शत्रुओ के वध के लिये उद्यत हो जाइये। शान्ति मुनियो के लिये ही होती है, राजाओ के लिये नही।

यदि आप जैसे तेजस्वी और यशस्वी भी इस प्रकार के अपमान को सहन कर लेगे तो ससार से स्वाभिमान ही समाप्त हो जायेगा।

राजन् ! यदि आप समझते है कि एकमात्र शांति ही सुख का साधन है, तो राज्य के चिह्न इस धनुष को त्याग दीजिये और जटाओं का धारण करके यहाँ अग्नि मे आहुतियाँ देते रहिये। यदि आप यह सोचते है कि हमको प्रतिज्ञा का पालन करना उचित है एव वनवास तथा अज्ञातवास की अवधि की प्रतीक्षा करनी चाहिये तो यह भी उचित नही है। विजय को प्राप्त करने के इच्छुक राजा बहाने बनाकर सधिया तोड देते है। अब प्रतिज्ञा की रक्षा के निमित्त और अधिक प्रतीक्षा करना उचित नही है आप शत्रुओ का सहार करके पुन राज्यलक्ष्मी को प्राप्त कीजिये।

(ग) राजनीतिकविचार

भारवि राजनीति के प्रकाण्ड पण्डित थे। उनकी यह राजनीतिज्ञता "किरातार्जुनीयम्" के प्रथम सर्ग से ही व्यञ्जित होनी आरम्भ होती है। प्रथम सर्ग मे उन्होने राजनीति के जिन प्रयोगो का उल्लेख किया है, उनको सक्षेप मे नीचे दिया जाता है—

(१) गुप्तचर व्यवस्था—अपने देश तथा दूसरे देशो की स्थितियो और वृतान्तो को जानने के लिये राजा को गुप्तचरो की नियुक्ति करना चाहिये। राजाओ को चारचक्षु कहा जाता है। गुप्तचरो द्वारा लाये गये समाचारो के आधार पर ही राजा अपने कर्तव्य का निश्चय कर सकता है।

गुप्तचर अनेक प्रकार के वेशो को बनाने मे निपुण होने चाहिये। उनको राजा का हितैषी होना चाहिये और राजा की प्रसन्नता या अप्रसन्नता का विचार न करके अच्छे या बुरे समाचारो को कहने मे सकोच नही करना चाहिये। वे शत्रुओ के गुप्ततम भेदो को भी निकाल लाने मे समर्थ होने चाहिये। राजा के पास वे जो समाचार ले जाये, वे प्रमाणो द्वारा निश्चित होना चाहिये[१]।

(२) राजा और मन्त्रियो मे सदा एकमत रहना चाहिये। उनके एक दूसरे

---

१ किरातार्जुनीयम् १ ३॥

के अनुकूल रहने पर ही राज्य की समृद्धि रहती है[१]।

(३) राजा अपनी इन्द्रियो को वश में करके काम, क्रोध, लोभ, मोह, मद और मत्सर इन छः आन्तरिक शत्रुओं को जीते। तभी वह सफल हो सकता है[२]।

(४) केवल नीति का प्रयोग या केवल पराक्रम, प्रशासन को स्थिर नही बनाये रख सकते। अवसर के अनुकूल नीति और पराक्रम दोनों का प्रयोग आवश्यक होता है[३]।

(५) राजा के लिये धर्म, अर्थ और काम तीनो की सिद्धि आवश्यक है। तीनो को प्राप्त करने के लिये उसे यथोचित उपाय करने चाहिये[४]।

(६) अनुरक्त सेवक ही प्रशासन को दृढ कर सकते है। राजा को इस प्रकार व्यवहार करना चाहिये कि सेवक उसको अपना स्नेही मित्र समझें[५]। उसे चाहिये कि वह गुणों के अनुसार सेवकों का सम्मान करे और उनको प्रचुर धन दे[६]।

(७) राजनीति में साम, दान दण्ड और भेद इन चारो उपायों का यथोचित प्रयोग सफलता को देने वाला होता है[७]।

(८) राजा को इतना प्रभावशाली होना चाहिये कि आदेशो का पालन कराने के लिये उसे बल प्रयोग का सहारा न लेना पड़े। उसके गुणो के प्रति अनुरक्त होकर ही उसके अधीनस्थ व्यक्ति उसके आदेशों का पालन करते रहे[८]।

(९) प्रजा की समृद्धि और प्रसन्नता में ही राजा की समृद्धि और स्थिरता है। प्रजा की समृद्धि के लिये उसे सदा प्रत्यनशील रहना चाहिये। कृषि की समृद्धि राज्य की समृद्धि हैं। राजा को चाहिये कि वह कृत्रिम सिंचाई के छ साधनो, नहरो, कुओ आदि का प्रबन्ध कराता रहे। कृषि केवल वर्षा पर ही

---

१ किरातार्जुनीयम् १ ५॥ २ किरातार्जुनीयम् १ ९॥
३ किरातार्जुनीयम् १ ९॥ ४ किरातार्जुनीयम् १ ११॥
५ किरातार्जुनीयम् १ १०॥ ६ किरातार्जुनीयम् १ १२॥
७ किरातार्जुनीयम् १ १२–१४॥ ८ किरातार्जुनीयम् १ २१॥

निभर न रहे[१] ।

(१०) राज्य की रक्षा क लिय राजा का तजस्वी पराक्रमी और युद्ध विद्या मे कुशल याद्धाओ का सग्रह करना चाहिये, उसे उनका म न और धन से सदा सत्कार करना चाहिये, जिससे कि शत्रु उनको अपनी ओर फोड न सके[२] ।

(११) राजा को केवल राजनीति कार्यों की ओर ही ध्यान न दकर धार्मिक कर्त्तव्यो के पालन म भी प्रत्यनशील रहना चाहिये[३] ।

(१२) राजा को पक्षपात स रहित होकर शासन करना चाहिये । न्याय की व्यवस्था मे चाहे कोई शत्रु हो चाहे स्नेही सम्बन्धी, सभी समान होन चाहिये[४] ।

(१३) राजा को चाहिये कि वह "शठे शाठ्य समाचरेत्" की नीति का पालन करे । कपटी व्यक्तियो के प्रति कपट का व्यवहार करना उचित है[५] ।

(१४) केवल क्षमाशील होने और शान्ति का पालन करने से राज्यो का शासन नही चलता । जो राजा क्रोध नही कर सकता और अपने क्रोध को सफल नही बना सकता, मित्र उसका आदर नही करते और शत्रु उससे भय नही खाते[६] ।

(१५) विजय के इच्छुक राजाओ को चाहिये कि वे सन्धियो की अधिक परवाह न करे । वे समय की प्रतीक्षा न करत हुये बहाना बना कर सन्धियो को तोड दे और शत्रुओ पर आक्रमण कर दे[७] ।

(घ) प्रथम सर्ग की सूक्तिया—

भारवि का काव्य सूक्तियो के सौन्दर्य के लिये प्रसिद्ध है । उन्होने अनेक सूक्तियो की सूचना की है । प्रथम सर्ग की सूक्तियाँ निम्न है—

---

१ किरातार्जुनीयम् १ १७ २ किरातार्जुनीयम् १ १९।।
३ किरातार्जुनीयम् १ २२ ४ किरातार्जुनीयम् १ १३।।
५ किरातार्जुनीयम् १ ३० ६ किरातार्जुनीयम् १ ४२।।
७ किरातार्जुनीयम् १ ४५।।

श्लोक संख्या

(१) न ह्री प्रिय प्रवक्तुमिच्छन्ति मृषा हितैषिण ।	२
(२) हित मनोहारि च दुलभ वच ।	४
(३) सदानुकूलेषु हि कुवते रतिं नृपेष्वमात्येषु च सवसम्पद, ।	५
(४) स किं सखा साधु न शास्ति योऽधिप हिता न य सशृणुते स किं प्रभु ।	५
(५) वर विरोधोऽपि सम महात्मभि ।	८
(६) निरत्यय साम न दानवर्जितम् ।	१२
(७) न भूरि दान विरहय्य सत्क्रियाम् ।	१२
(८) गुणानुरोधेन विना न सत्क्रिया ।	१२
(९) अहो दुर ता बलवद्विरोधिता ।	२३
(१०) तथापि वक्तु व्यवसाययन्ति मा निरस्तनारीसमया दुराधय ॥	२८
(११) व्रजन्ति ते मूढधिय पराभव, भवन्ति मायाविषु ये न मायिन ॥	३०
(१२) अव ध्यकोपस्य विहृ तुरापदा भवन्ति वश्या स्वयमेव देहिन ॥	३३
(१३) अमपशून्येन जनस्य जन्तुना न जातहार्देन न विद्विषादर ॥	३३
(१४) विचित्ररूपा खलु चित्तवृत्तय ।	३७
(१५) पररपयासितवीयसम्पदा पराभवोऽप्युत्सव एव मानिनाम् ॥	४१
(१६) व्रजन्ति शत्रूनवधूय नि स्पृहा शमेन सिद्धि मुनयो न भूभृत ॥	४२
(१७) निराश्रया हन्त हता मनस्विता ।	४३
(१८) अरिषु हि विजयार्थिन क्षितीशा विदधति सोपधि सन्धिदूषणानि ॥	४५

१० मल्लिनाथ का "किरातार्जुनीयम" की व्याख्या प्रारम्भ करने से पूर्व का मगलाचारण और वक्तव्य

अर्द्धाङ्गीकृतदाम्पत्यमपि गाढानुरागि यत् ।
पितृभ्यां जगतस्तस्मै कस्मैचि महसे नम ॥

आधे अग मे दाम्पत्य को स्वीकार करके भी जो प्रभूत स्नेह करने वाले है, ससार के माता पिता उन शिव पार्वती को हम किसी महान् कल्याण को प्राप्त करने के लिये नमस्कार करते ह ।

आलम्बे जगदालम्ब हेरम्बचरणाम्बुजम् ।
शुष्यन्ति यद्रज स्पर्शात् सद्य प्रत्यूहवाधय ॥

ससार को आश्रय देने वाले गणेश के चरणकमलो का मैं आश्रय लेता हूँ, जिनकी धूलियो के स्पश से विघ्नो की वृद्धिया तत्काल सूख जाती हे, अर्थात् विघ्न तुरत नष्ट हो जाते है ।

तद्दिव्यमव्यय धाम सारस्वतमुपास्महे ।
यत्प्रकाशात्प्रलीयन्ते मोहान्धतमसश्छटा ॥

सरस्वती के उस दिव्य अविनाशी धाम की हम उपासना करते हैं जिसके प्रकाश से मोह रूपी घने अन्धकार नष्ट हो जाते है ।

वाणीं काणभुजीमजीगणदवाशासीच्च वैयासकी-
मन्तस्तन्त्रमरस्त पन्नगगवीगुम्फेषु चाजागरीत् ।
वाचामाचकलद् रहस्यमखिल यश्चाक्षपादस्फुरा
लोके भूद्यदुपज्ञमेव विदुषा सौजन्यजन्य यश ॥

जिसने कणाद की वाणी को गिन लिया था, जिसने व्यास की वाणी का उपदेश पाया था, जिसने तन्त्रो के अन्दर रमण किया था, जो पतजलि की वाणी गुम्फनो मे जागता रहा था, जिसने गौतम के मुख से स्फुरित वाणियो के सम्पूर्ण रहस्य को जाना था, अर्थात् जिसने इन ऋषियो द्वारा प्रणीत विद्याओ का सम्यक प्रकार से अध्ययन करके ज्ञान प्राप्त किया था ।

मल्लिनाथकवि सोऽय मन्दात्मानुजिघृक्षया ।
तत्किराताजुनीय काव्य व्याख्यातुमिच्छति ॥

महामहोपाध्याय उपाधि धारण करने वाला यह मल्लिनाथ नाम का कवि 'किरातार्जुनीयम्' नाम के काव्य की व्याख्या करना चाहता है।

नारिकेलफलसम्मितं वचो भारवेः सपदि तद्विभज्यते।
स्वादयन्तु रसगर्भनिर्भरं सारमस्य रसिका यथेप्सितम्॥

भारवि कवि की नारिकेल के फल तुल्य वाणी की मल्लिनाथ व्याख्या कर रहे हैं। रसिक जन रस भर हुये इसके सार का आस्वादन करें। भाव यह है कि जिस प्रकार नारिकेल के फल के ऊपर कठोर आवरण होता है और उसके अन्दर रस से भरा हुआ फल रहता है, उसी प्रकार भारवि की वाणी के ऊपर क्लिष्ट आवरण है परन्तु उसके अन्दर रमणीय आनन्दकारी अर्थ है। मल्लिनाथ काव्य की क्लिष्टता की व्याख्या करके सहृदयों को काव्य के आनन्द का आस्वादन कराते हैं।

नानानिबन्धविषमकपदानिलान्त,
साशङ्कचङ्क्रमणखिन्नधियामशङ्कम्।
कर्तुं प्रवेशमिह भारविकाव्यबन्धे
घण्टापथं कमपि नूतनमातनिष्ये॥

भारवि के काव्य में अनेक प्रकार के कठिन पद हैं, जिनमें निरन्तर आशंका के साथ भ्रमण करने से बुद्धि खिन्न हो जाती है। भारवि द्वारा रचित इस 'किरातार्जुनीयम्' काव्य में सहृदयों का प्रवेश कराने के लिये मैं इस घण्टापथ नामक नवीन टीका का निर्माण करूँगा।

इहान्वयमुखेनैव सर्वं व्याख्यायते मया।
नामूलं लिख्यते किञ्चिन्नानपेक्षितमुच्यते॥

कोई वस्तु बिना किसी आधार के नहीं लिखी जाती और बिना किसी अपेक्षा के कही नहीं जाती। इस प्रकार इस काव्य में सङ्गत अर्थों द्वारा ही व्याख्या कर रहा हूँ।

तत्र भवान् भारविनामा कविः 'काव्यं यशसेऽर्थकृते व्यवहारविदे शिवेतरक्षतये सद्यः परनिर्वृतये कान्तासम्मिततयोपदेशयुजे। इत्याद्यालङ्कारिकवचनप्रामाण्यात्काव्यस्यानेकश्रेयःसाधनतां, काव्यालापांश्च वर्जयेद्' इति निषेधशास्त्रस्यासत्काव्यविषयतां च पश्यन् किरातार्जुनीयाख्यं महाकाव्यं चिकीर्षुश्चिकीर्षितार्थाविघ्नपरिसमाप्तिसम्प्रदायाविच्छेदलक्षणफलसाधनत्वाद् 'आशीर्नमस्क्रियावस्तुनि

दशो वापि तन्मुखम्' इत्याद्याशीर्वादाद्यन्यतमस्य एव धर्मुखलक्षणत्वाच्चा वनेचरस्य युधिष्ठिरप्राप्तिरूप वस्तु निर्दिशन्कथामुपक्षिपति।

काव्यशास्त्रो के अनुसार मम्मट ने काव्य की रचना करने के छः प्रयोजन बताये है—यश को प्राप्त करना, धन को प्राप्त करना, सामाजिक व्यवहार को जानना अमङ्गल का निवारण करना, आनन्द की अनुभूति प्राप्त करना और कान्ता सम्मित उपदेश प्राप्त करना। भारवि कवि इन उद्देश्यो को प्राप्त करने के लिये इस काव्य की रचना कर रहे है। शास्त्रो मे लिखा है कि काव्यो मे अनार्य का परित्याग कर देना चाहिये। भारवि का मत है कि यह कथन दुष्ट काव्यो के लिये ही है, उत्तम काव्यो के लिये नही। इस हेतु वे उत्तम काव्य 'किरातार्जुनीयम्' की रचना करना चाहते है। काव्यशास्त्री नियमो के अनुसार काव्य के निर्विघ्न परिसमाप्ति के लिये और काव्य के फलो को प्राप्त करने के लिये उसका तीन प्रकार से प्रारम्भ किया जा सकता है— देवताओ से आशीर्वाद प्राप्त करने का निर्देश करके, देवताओ को नमस्कार करके अथवा कथावस्तु का निर्देश करके। भारवि कवि कथा वस्तु का निर्देश करके काव्य को प्रारम्भ करते है। काव्य की कथा का प्रारम्भ वनेचर द्वारा युधिष्ठिर को दुर्योधन के समाचारो को बताने से प्रारम्भ होता है, इस कारण कवि सबसे पहले वनेचर को युधिष्ठिर के पास उपस्थित करते है।

'किरातार्जुनीयम्' प्रथम सर्ग

कथावस्तु का प्रसग —

कौरवो और पाण्डवो मे जुआ हुआ । जुये की अ तिम शत यह थी कि जो पक्ष हार जावे वह अपना राज्य विजेता को देकर बारह वष के लिये वनवास करे और उसके बाद एक वष के लिये अज्ञातवास करे । तेरह वष के बाद लौटकर आने पर वह अपना राज्य वापस पावेगा । जुये मे पाण्डव हार गये । शत के अनुसार वे वनों की ओर चल दिये और द्वैतवन मे रहने लगे । युधिष्ठिर को दुर्योधन की नीयत पर स देह था कि वह शत की अवधि पूरी होने पर भी हमारा राज्य वापिस देगा या नही । उसने एक किरात को गुप्त चर नियुक्त करके ब्रह्मचारी के वेश मे हस्तिनापुर भेजा कि वह पता लगाकर आवे कि इस समय दुर्योधन क्या तैयारियाँ कर रहा है और हम राज्य को वापिस पावेंगे भी या नही । हस्तिनापुर जाकर और वहा के समाचार जानकर वह किरात युधिष्ठिर की सेवा मे उपस्थित हुआ—

श्रियं कुरूणामधिपस्य पालनीं
प्रजासु वृत्तिं यमयुङ्क्त वेदितुम् ।
स वर्णिलिङ्गी विदितः समाययौ
युधिष्ठिरं द्वैतवने वनेचरः ॥१॥

अ वय—कुरूणाम अधिपस्य श्रियं पालनीम प्रजासु वत्तिम वेदितुम् यम् अयुङ्क्त वर्णिलिङ्गी स वनेचर विदित द्वैतवने युधिष्ठिरम् समाययौ ।

सस्कृत व्याख्या —'कुरूणा' त नामकस्य देवस्य 'अधिपस्य' स्वामिन दुर्योधनस्य श्रिय ' राजलक्ष्म्या पालनी' प्रतिष्ठापिका 'प्रजासु वृत्ति लोक विषयक व्यापार 'वेदितु ज्ञातु य वनेचर युधिष्ठिर 'अयुङ्क्त' नियुक्तवान, 'वर्णिलिङ्गी' वर्णिन' ब्रह्मचारिण लिङ्ग वेष यस्य तथाभूत ब्रह्मचारि

वर्णधारी इत्यर्थः स वनचरः किरातः 'विदितः' ज्ञातवृत्तान्तः 'द्वैतवने' 'द्वैतवनाख्ये वने युधिष्ठिर' तन्नामकं पाण्डवाग्रजं समाययौ समाजगाम।

हिन्दी गद्य—कुरु देश के स्वामी दुर्योधन की सम्पूर्ण पृथ्वी की सुरक्षा करने वाले प्रजा के प्रति व्यवहार को जानने के लिये युधिष्ठिर ने जिसकी नियुक्ति की थी, ब्रह्मचारी के वेष को धारण करने वाला वह किरात दुर्योधन के वृत्तान्त को जानकर द्वैतवन में युधिष्ठिर के पास आया।

भाव —दुर्योधन से जुये में हार कर पाण्डव द्वैतवन में रहने लगे थे। दुर्योधन किस प्रकार राज्य का प्रशासन कर रहा है, उसका प्रजा के प्रति किस प्रकार का व्यवहार है, प्रजा उससे सन्तुष्ट है या नहीं, वनवास की अवधि व्यतीत हो जाने पर भी वह राज्य को वापिस करेगा या नहीं, इत्यादि बातों को जानने के लिये युधिष्ठिर ने एक किरात को गुप्तचर नियुक्त किया था। वह ब्रह्मचारी का वेष धारण करके हस्तिनापुर गया और वहां के सम्पूर्ण वृत्तान्त को जानकर और लौटकर युधिष्ठिर के पास आया।

वाच्यपरिवर्तन—कुरूणाम् अधिपस्य श्रियः पालनीं प्रजासु वृत्तिं वेदितुं यः अयुज्यत परिगृहीतलिङ्गेन तेन वनचरेण विदितेन द्वैतवने युधिष्ठिरः समायायत।

टिप्पणियाँ

श्रियः—श्रयति पुरुषम् इस अर्थ में श्री। श्रिय=श्री। विभक्ति षष्ठी का एकवचन=श्रियः। कुरूणाम्—कुराणां निवासाः जनपदाः कुरवः। कुरु जाति के निवास स्थान जनपद कुरु कहलाते हैं। यहां जनपद अर्थ में 'तस्य निवासः', सूत्र से 'अण्' प्रत्यय होकर 'जनपदे लुप्' सूत्र से उसका लोप हो जाता है। जनपद वाची शब्द सदा बहुवचन में प्रयुक्त होते हैं। षष्ठी विभक्ति के बहुवचन में=कुरूणाम्। अधिपस्य—अधि पाति रक्षति इस अर्थ में अधि+पा+क=अधिप। षष्ठी विभक्ति का एक वचन=अधिपस्य। पालनीम्—पाल+ल्युट (अन्)+ङीप्=पालनी। द्वितीया विभक्ति का एकवचन=पालनीम। प्रजासु—प्र+जन+ड+टाप्=प्रजा। सप्तमी विभक्ति का बहुवचन=प्रजासु। वृत्तिम्—वृत्+क्तिन्=वृत्ति। द्वितीया विभक्ति का एकवचन=

वत्तिम । यम्—यत सवनाम से पुल्लिङ्ग में द्वितीया के एकवचन में=यम । अयुङ क्त युज धातु से लुङ्ग लकार में प्रथम पुरुष का एकवचन । वेदितुम—विद्+तुमुन=वेदितुम् । वर्णिलिंगी —वर्ण प्रशस्त मस्य अस्ति इस अर्थ में वर्ण+इनि=वर्णिन । वर्णिन लिंग चिह्न मस्य अस्ति स वर्णि लिंग+इनि=वर्णिलिंगी । विदित - विद धातु से कर्म में क्त प्रत्यय होकर=विदित । विदितम गस्य अस्ति अर्थ में 'अश आदिभ्यो अच' सूत्र से अच प्रत्यय विदित+अच=विदित । वत्तान्त को जानने वाला । अथवा विदित वत्तान्त येन स - उत्तरपदलोपी बहुव्रीहिसमास । विदितवत्तान्त अर्थ हुआ । युधिष्ठिर—युधि रणे स्थिर । सप्तमी तत्पुरुष समास । पाण्डवो में सबसे बड़े भाई का नाम युधिष्ठिर था । द्वैतवने —द्वौ इतौ गतौ यस्मात तद द्वैतम् । जहा से शोक और मोह ये दोनो चले गये हो वह स्थान द्वैत वन इस विग्रह में कर्मधारय समास होकर द्वैतवन बना । सप्तमी विभक्ति के एकवचन में द्वैतवने । वनेचर —वने चरति अर्थ में 'चरेष्ट' सूत्र से टच प्रत्यय । वने+चर+ट वनेचर । यहा समास में 'तत्पुरुषे कृति बहुलम्' नियम से सप्तमी विभक्ति का लोप नहीं हुआ ।

अलकार—वत्त्यनुप्रास ।

वने वनेचर —में स्वरो और व्यञ्जनो के समुदाय की एक ही बार आवत्ति से वत्ति अनुप्रास अलकार है ।

छन्द —वशस्थ । वशस्थ का लक्षण—

जतौ तु वशस्थमुदीरितं जरौ—

जिस छन्द में एक जगण (ISI), एक तगण (SSI), एक जगण (ISI) और एक रगण (SIS) हो तो वह छन्द वशस्थ होता है ।

I S I S S I I S I S I S
श्रि य कु रू णा म धि प स्य पा ल नी

I S I S S I I S I S I S
प्र जा सु व त्तिं य म यु ङ्क्त वे दि तुम

I S I S S I I S I S I S
स व र्णि लि ङ्गी वि दि त स मा य यौ

। ऽ । ऽ ऽ । । ऽ । ऽ । ऽ
यु धि ष्ठि र द्व त वने वने च र ।।

विशेष कथन—सस्कृत काव्यो की परम्परा के अनुसार काव्य का प्रारम्भ मगलकारी वचनो से करना चाहिये। काव्यशास्त्रो के नियम के अनुसार काव्य को आशिस नमस्कार और कथावस्तु का निदश करके प्रारम्भ किया जा सकता है। कथावस्तु का निर्देश करना भी मगलकारी समझा जाता है। इस काव्य को श्री' शब्द से प्रारम्भ किया गया है, जो मगल की सूचना देने वाला है।

घण्टापथ टीका—श्रिय इति। आदित श्रीशब्दप्रयोगाद् वर्णगणादिशुद्धि र्नात्रातीवोपयुज्यते। तदुक्त—'देवतावाचका शब्दा ये च भद्रादिवाचका। ते सर्वे नैव निन्द्या स्युर्लिपितो गणतोऽपि वा'॥ इति। कुरूणा निवासा कुरवा जनपदा। 'तस्य निवास' इत्यण प्रत्यय। 'जनपदे लुप'। तेषामधिपस्य दुर्योधनस्य सम्बन्धिनीम। शेषे षष्ठी। श्रियो राजलक्ष्म्या 'कर्तृकर्मणो कृति' इति कर्मणि षष्ठी। पाल्यतेऽनयेति पालनी ताम। प्रतिष्ठापिकाम इत्यथ। प्रजारागमूलत्वात्सम्पद इति भाव। 'करणाधिकरणयोश्च' इति करणे ल्युट। 'टिड्ढाणञ्' इत्यादिना ङीप। प्रजासु जनेषु विषये। 'प्रजा स्यात्स ततौ जने' इत्यमर। वृत्ति व्यवहार वेदितु ज्ञातु य वनेचरमयुङ्क्त नियुक्तवान। वर्ण प्रशस्तिरस्यास्तीति वर्णी ब्रह्मचारी। तदुक्त—'स्मरण कीर्तन केलि प्रेक्षण गुह्यभाषणम। सकल्पोऽध्यवसायश्च क्रियानिवृत्तिरेव च॥ एत मैथुनमष्टाग प्रवदन्ति मनीषिण। विपरीत ब्रह्मचर्यमेतदेवाष्टलक्षणम'॥ एतदष्टविधमैथुनाभाव प्रशस्ति। 'वर्णाद् ब्रह्मचारिणि' इतीनि प्रत्यय। तस्य लिङ्ग चिह्नमस्यास्तीति वर्णिलिङ्गी। ब्रह्मचारिवेषवानित्यथ। स नियुक्त, वने चरतीति वनेचर किरात। भेदा किरातशबरपुलिन्दा म्लेच्छजातय' इत्यमर। 'चरेष्ट' इति ट प्रत्यय। 'तत्पुरुषे कृति बहुलम' इत्यलुक। विदित वेदनमस्यास्तीति विदित। परवृत्तान्तज्ञानवान् इत्यथ। 'अर्श आदिभ्योऽच्' इत्यच्प्रत्यय अथवा कतरि कर्मधर्मोपचाराद् विदितवृत्तान्तो विदित इत्युच्यते। उभयत्रापि 'पिता गाव', 'भुक्ता ब्राह्मणा, विभक्ता भ्रातर',

इत्यादिवत्साधुत्व, न तु कर्तरि क्त, सकर्मकेभ्यस्तस्य विधानाभावात । अत एव भाष्यकार —'अकारो मत्वर्थीय । विभक्तमेषामस्तीति विभक्ता । पीत मेषामस्तीति पीता ' इति सर्वत्र । अथवोत्तरपदलोपोऽत्र द्रष्टव्य । 'विभक्तधना विभक्ता, पीतोदका पीता, इति । अत्र लोपशब्दार्थमाह कयट —'गम्यार्थ स्याप्रयोग एव लोपोऽभिमत । विभक्ता भ्रातर' इत्यत्र च धनस्य यद् विभक्तत्व तद् भ्रातृषूपचरितम । पीतोदका गाव, इत्यत्रात्युदकस्य पीतत्व गोष्वारो यते' इति । तद्वदत्रापि वृत्तिगत विदित्व वेदितरि वनेचर उपचर्यते । एतेन 'वनाय पीतप्रतिबद्धवत्साम', पातु न प्रथम व्यवस्यति जल युष्मास्व पीतेषु या' एवमादयो व्याख्याता । अथवा विदित विदितवान । सकर्मकादप्य विवक्षिते कर्मणि कर्तरि क्त । यथा आशित कर्ता' इत्यादौ । यथाऽऽह — 'धातोरर्थान्तरे वृत्तेर्धात्वर्थेनोपसंग्रहात । प्रसिद्धेरविवक्षात कर्मणोऽकर्मिका क्रिया' ॥ इति । द्वैतवने द्वैताख्ये तपोवने । यद्वा द्वे इते गत यस्मात्तद् द्वीत, द्वीतमेव द्वैत, तच्च तद्वन च तस्मिन, शोकमोहादिवर्जित इत्यर्थ । युधिष्ठिर धर्मराजम् । 'हल तात्सप्तम्या सज्ञायाम्' इत्यलुक । 'गवियुधिभ्या स्थिर ' इति षत्वम । समाययौ सम्प्राप्त । अत्र वने वनेचर, इति द्वयो स्वरव्यञ्जनस मुदाययोरेकदवावत्या वृत्त्यनुप्रासो नामालङ्कार । अस्मिन्सर्गे वशस्थवृत्त तल्ल क्षण 'जतौ तु वशस्थमुदीरित जरौ' इति ॥१॥

प्रकरण युधिष्ठिर द्वारा नियुक्त किया हुआ किरात हस्तिनापुर के समाचारो को जानकर अपने स्वामी की सेवा मे उपस्थित हुआ । समाचार शुभ नही थे, तथापि स्वामी का हितैषी होने के कारण वह उनको सुनाने से रुकता नही—

कृतप्रणामस्य मही महीभुजे
जिता सपत्नेन निवेदयिष्यत ।
न विव्यथे तस्य मनो न हि प्रिय
प्रवक्तुमिच्छन्ति मृषा हितैषिण ॥२॥

अन्वय—कृतप्रणामस्य सपत्नेन जिता मही महीभुजे विवेदयिष्यत तस्य मन न विव्यथे । हि हितैषिण मृषा प्रिय प्रवक्तु न इच्छन्ति ।

संस्कृत व्याख्या—'कृतप्रणामस्य' कृत विहित प्रणाम अभिवादन येन तस्य सपत्नेन' शत्रुणा जिता' द्यूतेन स्वाधीना विहिता 'मही' पृथिवी तद् विषयक समाचार 'महीभुजे' राज्ञे युधिष्ठिराय 'निवेदयिष्यत ' ज्ञापयिष्यत तस्य वनेचरस्य 'मन ' चित्त, न 'विव्यथे' व्यथित न बभूव । 'हि' यत 'हितैषिण ' स्वामिन हितेच्छुका , सेवका 'मृषा' असत्य प्रिय मधुरवचन 'प्रवक्तु ' कथयितु न 'इच्छन्ति' अभिलषन्ति ।

हिन्दी अर्थ—प्रणाम करने के अनन्तर शत्रु द्वारा जीती हुई पृथिवी के समाचार को राजा युधिष्ठिर से कहते हुये उस किरात का मन व्यथित नहीं हुआ क्योंकि हितैषी सेवक असत्य ही प्रिय बात को कहने के इच्छुक नहीं होते ।

भाव—उस किरात गुप्तचर ने पहले राजा को प्रणाम किया । अब वह हस्तिनापुर का समाचार युधिष्ठिर से कहने के लिए उद्यत हुआ । युधिष्ठिर का राज्य पहले दुर्योधन ने द्यूत में जीत लिया था । उस राज्य को अपना अधिकार में स्थिर रखने के लिये दुर्योधन अनेक प्रकार के उपाय कर रहा था । अत युधिष्ठिर के लिए वहाँ का वृत्तान्त प्रिय नहीं था । तथापि राजा को पीडा होगी, इस कारण से ही किरात उस वृत्तान्त को सच सच कहने में हिचकिचाया नहीं । हितैषी वे ही होते हैं जो सुनने वाले की प्रसन्नता का विचार न करके सत्य बात को कह देते हैं ।

वाच्यपरिवर्तन—कृतप्रणामस्य सपत्नेन जिता मही महीभुजे निवेदयिष्यत, तस्य मनसा न व्यथितम । हि हितैषिभि मृषा प्रवक्तु न इष्यते ।

टिप्पणियाँ

कृतप्रणामस्य—कृत प्रणाम येन तस्य । बहुव्रीहि समास । कृ + क्त = कृत । प्र + नम् + घञ = प्रणाम । महीभुजे—मही भुनक्ति अर्थ में मही + भुज + क्विप = महीभुक् । पृथिवी का भोग करने वाला । चतुर्थी विभक्ति का एकवचन = महीभुजे । 'महीभुज बोधयितुम' राजा को जतलाने के लिये इस अर्थ में 'क्रियार्थोपपदस्य च कर्मणि स्थानिन , सूत्र से क्रियार्थ क्रिया उपपद

होने पर स्थानी क्रिया के तुमुन के अर्थ में अर्थात 'बोधयितु' क्रिया के तुमुन के अर्थ को द्योतित करने के लिये महीभुजे में चतुर्थी विभक्ति हुई। जिताम— जि+क्त+टाप्=जिता। द्वितीया विभक्ति का एकवचन=जिताम। सपत्नेन—सह एकार्थ पतति अर्थ में सह+पत+न=सपत्न। तृतीया विभक्ति का एकवचन=सपत्नेन। निवेदयिष्यत—नि+विद्+णिच+शतृ (लृट लकार के अर्थ में)=निवेदयिष्यत। षष्ठी विभक्ति का एकवचन= निवेदयिष्यत। राजा के सम्मुख जो अभी निवेदन करेगा उसका। विव्यथे— व्यथ धातु लिट लकार प्रथम पुरुष का एकवचन। प्रवक्तुम—प्र+वच+ तुमुन=प्रवक्तुम। हितैषिण—हितम इच्छति इस अर्थ में हित+इष+ णिनि=हितैषिन। प्रथमा विभक्ति का बहुवचन=हितैषिण।

अलंकार—अर्थान्तरन्यास। अर्थान्तरन्यास अलंकार का लक्षण—

सामान्य वा विशेषो वा यदन्येन समर्थ्यते।
यत्तु सोऽर्थान्तरन्यास साधर्म्येणेतरेण वा॥

जब सामान्य का विशेष से या विशेष का सामान्य से साधर्म्य या वैधर्म्य द्वारा समर्थन किया जाता है, वहाँ अर्थान्तरन्यास अलंकार होता है। इस श्लोक में उस वनेचर का मन अप्रिय सत्य को कहने में नहीं हिचकिचाया, इस विशेष का समर्थन हितैषी व्यक्ति असत्य और प्रिय बात ना कहने की इच्छा नहीं करते, इस सामान्य से साधर्म्य द्वारा किया गया है। अतः यहाँ अर्थान्तरन्यास अलंकार है।

छन्द—वंशस्थ।

विशेष कथन—गुप्तचर में चतुराई, स्फूर्ति, स्वामी को सत्य सत्य बात बताना और ठीक प्रकार से अनुमान कर सकना ये चार गुण होने चाहियें।

घण्टापथ टीका—कृतप्रणामस्येति। कृतप्रणामस्य तत्कालोचितत्वात्कृत नमस्कारस्य सपत्नेन रिपुणा दुर्योधनेन। 'रिपौ वैरिसपत्नारिद्विषद्द्वेषण दुर्हृद' इत्यमर। जिता स्वायत्तीकृता महीं महीभुजे युधिष्ठिराय क्रिया ग्रहणात सम्प्रदानत्वम। निवेदयिष्यतो ज्ञापयिष्यत। 'लृट सद्वा' इति शतृ- प्रत्यय। तस्य वनेचरस्य मनो न विव्यथे। कथमीदृगप्रियं राज्ञे विज्ञापयामीति मनसि न चचालेत्यर्थ। 'व्यथ भयचलनयो' इति धातोर्लिट्। उक्तमर्थमर्था

तस्यासेन समर्थयते न हीति । हि यस्माद् । हितमिच्छन्तीति हितैषिण स्वामिहितार्थिन पुरुषा मिथ्याभूत प्रिय प्रवक्तु नेच्छन्ति, अन्यथा काय विघातकतया स्वामिद्रोहिण स्युरिति भाव । 'अमीढयममान्धमगृपाभाषि त्वमश्यूहकत्व चेति चारगुणा ' इति नीतिवाक्यामृते ।।२।।

प्रकरण—क्योकि वनेचर द्वारा लाया गया समाचार राजा के लिए प्रिय नही था, अत पहले उसने स्वामी से उसको सुनाने की अनुमति ली, तदन तर वह कहने लगा ।

द्विषा विघाताय विधातुमिच्छतो
रहस्यनुज्ञामधिगम्य भूभृत ।
स सौष्ठवौदार्यविशेषशालिनी
विनिश्चितार्थामिति वाचमाददे ।।३।।

अ वय– द्विषा विघाताय विधातुम इच्छत भूभृत रहसि अनु ज्ञाम अधिगम्य स सौष्ठवौदार्यविशेषशालिनीम विनिश्चितार्थाम इति वाचम आददे ।

सस्कृत व्याख्या—'द्विषा' शत्रूणा 'विघाताय विनाशाय 'विधातु प्रयत्नानि कतु म् इच्छत , अभिलषत 'भूभृत राज्ञ युधिष्ठिरस्य 'अनुज्ञाम' अनुमतिम 'अधिगम्य, प्राप्य स वनेचर सौष्ठवौदार्यविशषशालिनी सौष्ठवस्य शब्दसार्थ्यस्य औदायस्य अथसामर्थ्यस्य च विशेषण अतिशयेन विशेष प्रमाण निश्चित निर्णीत अथ स्वरूप यस्या तादृशीम् 'इति' एवविधा' वाच वाणीम् 'आददे, स्वीचकार कथयामास इत्यथ ।

हिन्दी अथ—शत्रुओं का विनाश करने के लिये प्रयत्नों को करने की इच्छा वाले राजा युधिष्ठिर की अनुमति को प्राप्त करके उस वनेचर ने शब्दों और अर्थो की गरिमा से युक्त एव प्रमाणो से निश्चित अथ वाली वाणी को कहा ।

भाव—वनेचर द्वारा लाया गया समाचार राजा के लिये प्रिय नहीं था। परन्तु राजा तो शत्रुओं का विनाश करने के लिये प्रयत्न करते थे, अतः अप्रिय बात को बताने के लिये किरात ने पहले राजा से अनुमति ली। इसके बाद उसने जो बात कही, वह शब्दों और अर्थों की गरिमा से भरी हुई थी और उसका प्रत्येक कथन निश्चित प्रमाणों पर आधारित था।

वाच्यपरिवर्तन—द्विषां विघाताय विधातुम् इच्छत भूभृत रहसि अनुज्ञाम् अधिगम्य तेन सौष्ठवौदार्यविशेषशालिनी विनिश्चितार्था इति वाग् आदत्ता।

टिप्पणियाँ

द्विषाम्—द्विषन्ति इस अर्थ मे द्विष + क्विप् = द्विष। षष्ठी विभक्ति के बहुवचन मे = द्विषाम्। विघाताय–वि + हन + घञ = विघात। चतुर्थी विभक्ति के एकवचन मे = विघाताय। यहाँ 'विहन्तुम' इस तुमुन् प्रत्यय के अर्थ मे भाव अर्थ मे किये गये घञ प्रत्ययान्त शब्द से 'तुमर्थाच्च भाववचनात्' सूत्र से चतुर्थी विभक्ति हुई। विधातुम्—वि + धा + तुमुन् = विधातुम्। इच्छत —इष + शतृ + इच्छत्। षष्ठी विभक्ति का एकवचन = इच्छत। अनुज्ञाम्— अनु + ज्ञा + अङ + टाप = अनुज्ञा। द्वितीया विभक्ति का एकवचन = अनुज्ञाम्। अधिगम्य—अधि + गम + क्त्वा (ल्यप) = अधिगम्य। भूभृत —भुवं बिभर्ति अर्थ मे भू + भृ + क्विप् = भूभृत। षष्ठी विभक्ति का एकवचन = भूभृत। सौष्ठवौदार्यविशेषशालिनीम्—सौष्ठवं च औदार्य च सौष्ठवौदार्ये। इतरेतर द्वन्द्व समास। सौष्ठवौदार्ययो विशेष सौष्ठवौदार्यविशेष। षष्ठी तत्पुरुष समास। तेन शालते शोभते इति ताम्। सौष्ठव + औदार्य विशेष शाल + इनि + ङीप् = सौष्ठवौदार्यविशेषशालिनी। द्वितीया विभक्ति के एकवचन मे = सौष्ठवौदार्यविशेषशालिनीम्। सुष्ठु + अण = सौष्ठव। उदारस्य भाव अर्थ मे उदार + ष्यञ = औदार्य। सौष्ठव— जिसमे शब्दो की रमणीयता हो। औदार्य—जिसमे अर्थों की गम्भीरता हो। विनिश्चितार्थाम्—विशेषेण निश्चित अर्थ यस्या ताम्। बहुव्रीहि समास निस + चि + क्त = निश्चित। आददे— आ + दा धातु से आत्मनेपद के लिट् लकार मे प्रथम पुरुष एकवचन।

छन्द— वंशस्थ।

विशेष-कथन— आलोचकों ने भारवि की विशेषता बतलाई है कि उसके काव्यों में अर्थ का गौरव है। 'भारवेरर्थगौरवम्'। भारवि के अनुसार काव्य की वाणी में तीन विशेषतायें होनी चाहियें—१ सौष्ठव—पदों में विन्यास की रमणीयता होनी चाहिये। २ औदार्य—पदों के अर्थों में गम्भीरता होनी चाहिये। ३ विनिश्चितार्थता—जो भी बात कही जाय वह प्रमाणों द्वारा निश्चित होनी चाहिये।

घण्टापथ टीका–द्विषामिति। रहस्य एव। तं च स चारो द्विषां शत्रूणाम् कर्मणि षष्ठी। विघाताय विहन्तुमित्यर्थ। 'तुमर्थाच्च भाववचनात्' इति चतुर्थी। भाववचनाश्च इति तुमर्थे घञ् प्रत्यय। अत्र तादर्थ्यमपि न दोष। तथाऽपि प्रयोगबाहुल्यात् विशेषस्याप्यलङ्कारत्वादेव व्याचक्षते। विधातुं व्यापारं कर्तुमिच्छन्। 'समानकर्तृकेषु तुमुन्'। द्विषां विहन्तुमुद्युक्तज्ञानस्येत्यर्थ। अत एव भूभृतो युधिष्ठिरस्यानुज्ञामधिगम्य। सुष्ठु भाव सौष्ठवं शब्दसामर्थ्यम्। सुष्ठुशब्दाद्युवादिगणत्वादण्प्रत्यय। उदारस्य भाव। औदार्यमर्थसम्पत्ति। तयोर्द्वन्द्व सौष्ठवौदार्य। अत्रोदारशब्दस्याजाद्यदन्तत्वेऽपि 'लक्षणहेत्वो क्रियाया' इत्यत्राल्पतरस्यापि हेतुशब्दस्य पूर्वनिपातमकृत्वा सूत्रकार पूर्वनिपात तस्यानित्यत्वज्ञापनात् पूर्वनिपात उक्त चकासिकायाम्—अयमेव लक्षणहेत्वोरिति निर्देश पूर्वनिपातव्यभिचारचिह्नम् इति। तयोर्विशेष। तेन शालते शोभते इति सौष्ठवौदार्यविशेषशालिनी ताम्। ताच्छील्ये णिनि। विनिश्चितार्थां विशेषत प्रमाणतो निर्णीतार्थामिति यावत् मागरूपां वाचमादद स्वीकृतवान्। उवाचेत्यर्थ ॥३॥

प्रकरण—प्रिय समाचार को सुनाने की अनुमति प्राप्त करके भी स्वामी के मन में खेद उत्पन्न न हो अत विनय प्रकट करता हुआ वनेचर पहले क्षमा मांगता है—

क्रियासु युक्तैर्नृप । चारचक्षुषो
न वञ्चनीया प्रभवोऽनुजीविभि ।
अतोऽर्हसि क्षन्तुमसाधु साधु वा
हितं मनोहारि च दुर्लभं वच ॥४॥

अन्वय—नृप ! क्रियासु युक्तैः अनुजीविभिः चारचक्षुषः प्रभवः न वञ्चनीयाः । अतः साधु असाधु वा क्षन्तुम् अर्हसि । हितम् मनोहारि च वचः दुर्लभम् ।

संस्कृत व्याख्या—'नृप !' हे राजन् ! 'क्रियासु' राजा निर्दिष्टेषु व्यापारेषु 'युक्तैः' नियोजितैः 'अनुजीविभिः' सेवकैः 'चारचक्षुषः' चाराः गुप्तचराः एव चक्षूंषि नेत्राणि यषां ते 'प्रभवः' स्वामिनः 'न वञ्चनीयाः' मिथ्यावचनैः न प्रतारणीयाः 'अतः' अस्मात् कारणात् 'साधु' प्रियम् 'असाधु' अप्रियं वा यत् मदुक्तं तत् 'क्षन्तुं' सोढुम् 'अर्हसि' योग्यः असि । यद् यत् प्रियं वा अप्रियं वा । वच्मि तत् त्वं क्षमस्व इत्यर्थः । 'हितं हितकारि' 'मनोहारि' मनः चित्तं हरति रञ्जयति इति तथाभूतं 'वचः' वचनं 'दुर्लभम्' दुःखेन लभ्यते । अतः मम अप्रियाण्यपि परं हितकारीणि वचनानि श्रुत्वा भवान् क्षमताम् ।

हिन्दी अर्थ—हे राजन् ! विभिन्न कार्यों में नियुक्त किये गये सेवकों को चाहिये कि वे गुप्तचरों की आँखों से देखने वाले स्वामियों को ठगें नहीं । अतः मैं जो भी प्रिय अप्रिय बात कहूँ, आप उसके लिये मुझको क्षमा कर दें । हितकारी और मन को प्रसन्न करने वाली दोनों गुणों से युक्त वाणी कठिनता से मिलती है ।

भाव—हे राजन् ! राजा विभिन्न कार्यों के लिए विभिन्न सेवकों को नियुक्त करते हैं । स्वदेश और विदेश के समाचारों को वे गुप्तचरों द्वारा ही जान सकते हैं । यदि सेवक यह विचार करेंगे कि अप्रिय बात को बताने से राजा क्रोधित होंगे तो वे केवल प्रिय बात ही कहेंगे और यथार्थ बात का पता नहीं लगेगा । राजा ठगा जायेगा और वह विपत्ति को दूर करने के उपाय नहीं कर सकेगा । मेरे कथन में कुछ बातें ऐसी भी हो सकती हैं जो आपको अप्रिय लगें । आप उस अप्रिय कथन के लिये मुझको क्षमा करदें । ऐसे वचन कहना बहुत कठिन होता है जो श्रोता के लिये हितकारी भी हों सुनने में भी प्रिय लगें ।

वाच्यपरिवर्तन—हे नृप ! क्रियासु युक्ताः अनुजीविनः चारचक्षुषः प्रभून् न वञ्चयेयुः । अतः भवता असाधु साधु वा क्षन्तुम् अर्ह्यते । हितेन मनोहारिणा च वचसा दुर्लभेन भूयते ।

टिप्पणियाँ

युक्त —युज् + क्त =युक्त । तृतीया विभक्ति का बहुवचन=युक्तै । नृप—ना पाति अर्थ में न+पा+क=नृप। सम्बोधन का एकवचन। चारचक्षुष —चारा चक्षुंषि येषां ते बहुव्रीहि समास। वञ्चनीया—वञ्च +अनीयर=वञ्चनीय । प्रथमा विभक्ति का बहुवचन=वञ्चनीया । अनुजीविभि —अनु जीवितु शील येषा ते अर्थ मे अनु+जीव+णिनि= अनुजीविन् । तृतीया विभक्ति का बहुवचन अनुजीविभि । कर्ता मे तृतीया विभक्ति का बहुवचन अनुजीविभि । कर्त्ता मे तृतीया विभक्ति हुई। अत — एतस्माद् अर्थ मे एतत्+तसिल=अत । क्षन्तुम—क्षम+तुमुन=क्षन्तुम । साधु—साध+उण=साधु । असाधु—न साधु=असाधु । नञ्तत्पुरुष समास । हितम—धा+क्त=हित । मनोहारि—मन हर्तुम् शील यस्य तत् अर्थ मे मनस+हृ+णिनि=मनोहारिन । नपुंसकलिंग मे प्रथमा विभक्ति का एक वचन मनोहारि । दुर्लभम—दुर+लभ+अच=दुर्लभ ।

अलंकार—अर्थान्तर न्यास ।

प्रस्तुत श्लोक मे 'हितं मनोहारि च दुर्लभ वच ' इस सामान्य के द्वारा साधर्म्य मे 'अतोऽर्हसि क्षन्तुमसाधु साधु वा' इस विशेष का समर्थन किया गया है। अत यहां अर्थान्तर न्यास अलंकार है।

छन्द—वंशस्थ ।

विशेष कथन—राजा चारचक्षु कहलाते है। वे गुप्तचरो की आंखो से देखते है। अपने देश तथा विदेशो के समाचारो को जानना राजाओ के लिये अनिवार्य है। समाचारो को जान कर और उनके अनुसार उपाय करके राजा शासन को सुदृढ कर सकता है और प्रजा की रक्षा कर सकता है। जिस राज्य की गुप्तचर व्यवस्था सुदृढ और सुव्यवस्थित नही होती, वह राज्य शीघ्र नष्ट हो जाता है। जो वचन हित करने वाला होता है, वह प्राय कटु होता है। इसलिये मनुष्य को हितकारी वचन सुनकर उसके कटु होते हुये भी नाराज नही होना चाहिये।

घण्टापथ टीका—क्रियास्विति। हे नृप! क्रियासु कृत्यवस्तुषु युक्तै नियुक्तैरनुजीविभिर्भृत्यै । चाराविभिरित्यर्थ । चरन्तीतिचरा । 'पचाद्यच्' ।

त एव चारा । चर पचाद्यच तात्प्रज्ञादित्वादण्प्रत्यय । त एव चक्षुर्येषां ते चारचक्षुष । 'स्वपरमण्डले कार्याकार्यविलोकने चाराश्चक्षूंषि क्षितिपतीनाम्' इति नीतिवाक्यामृते । प्रभवो निग्रहानुग्रहसमर्था स्वामिनो न वञ्चनीया न प्रतारणीया । सत्यमेव वक्तव्या इत्यर्थ । चारापचारे चक्षुरपचारवद्राज्ञा पदे पदे निपात इति भाव । अतोऽप्रतायत्वाद्धेतो । असाध्वप्रिय साधु प्रिय वा । मदुक्तमिति शेष । क्षन्तु सोढुमर्हसि । कुत । हित पथ्य मनोहारि प्रिय च वचो दुर्लभम । अतो मद्वचोऽपि हितत्वादप्रियमपि क्षन्तव्यमित्यर्थ ।

प्रकरण—मेरा वचन अप्रिय हो सकता है परन्तु वह हितकारी होगा । अत उस अप्रिय को सुनकर आप नाराज न हों । इस प्रकार राजा युधिष्ठिर से क्षमा मागकर वह वनेचर पुन कहता है—

स किंसखा साधु न शास्ति योऽधिप
हितान्न य सशृणुते स किंप्रभु ।
सदाऽनुकूलेषु हि कुर्वते रति
नृपेष्वमात्येषु च सर्वसम्पद ॥५॥

अन्वय—य अधिप साधु न शास्ति स किंसखा । य हितान् न सशृणुते स किंप्रभु । हि अनुकूलेषु नृपेषु अमात्येषु च सर्वसम्पद सदा रतिम् कुर्वते ।

संस्कृत व्याख्या—य सखा अमात्यादि 'अधिप' राजान 'साधु' हितकारिण वचन न 'शास्ति' उपदिशति स 'किंसखा' कुत्सित मित्रम भवति । य प्रभु 'हितान्' हितकारिण वचनान् 'न सशृणुते' ध्यानेन न शृणोति स किं प्रभु 'कुत्सित' स्वामी भवति । 'हि' निश्चयेन अनुकूलेषु' ऐकमत्येषु 'नृपेषु' 'राजसु' अमात्येषु' मन्त्रिषु च 'सर्वसम्पद' सकला समृद्धय 'सदा' नित्य 'रतिम' अनुराग कुर्वते' कुर्वन्ति ।

हिन्दी अर्थ—जो मित्र मन्त्री आदि राजा को हितकारी उपदेश नही देता वह बुरा मित्र होता है। जो राजा हितकारी उपदेशों को ध्यान से नही सुनता, वह बुरा राजा होता है । एक मत में रहने वाले राजाओ और मन्त्रियो से सब समृद्धियाँ सदा स्नेह करती हैं ।

भाव—मन्त्री को चाहिये कि वह राजा से सदा हितकारी वचनों को ही कहे, चाहे वे सुनने में कितने ही अप्रिय क्यों न हों। राजा को चाहिये कि वह मन्त्रियों के हितकारी वचनों को, चाहे वे कितने ही कटु क्यों न हों, सदा ध्यान से सुने और नाराज न हो। इस प्रकार जब राजा और मन्त्री अपने कर्त्तव्यों का पालन करते हुये सदा एक मत रहते हैं तब सब सम्पत्तियां उनके पास सदा विद्यमान रहती हैं। उनका राज्य स्थिर रहता है और राज्य में सदा खुशहाली बनी रहती है।

वाच्यपरिवर्तन—येन अविप साधु न शास्यते तेन किं सख्या (भूयते) तेन हिता न श्रूय ते तेन किं प्रभुणा (भूयते)। हि अनुकूलेषु नृपेषु च सर्वम सम्पद्भि सदा रति क्रियते।

टिप्पणियाँ

किराजा—कुत्सित राजा। तत्पुरुष समास। यहाँ 'राजाहस्सखिभ्यष्टच' सूत्र से 'टच प्रत्यय होकर 'किंराज' बनना चाहिये था। परन्तु 'किम क्षेपे' सूत्र से उस प्रत्यय का निषेध हो गया। किंप्रभु—कुत्सित प्रभु। तत्पुरुष समास। कुरुते—आत्मनेपदी कृ धातु से लट लकार प्रथम पुरुष का बहुवचन=कुर्वते रतिम—रम। क्तिन्=रति। द्वितीया विभक्ति का एकवचन=रतिम। अमात्येषु—अमात्य तया सह वसति अथ म समास। त्यप=अमात्य। सप्तमी विभक्ति का बहुवचन=अमात्येषु। सर्वसम्पद—सर्वा सम्पद। कर्मधारय समास। सम+पद+क्विप्=सम्पद। प्रथमा विभक्ति का बहुवचन=सम्पद।

अलङ्कार—काव्यलिङ्ग। काव्यलिङ्ग अलङ्कार का लक्षण—

समर्थनीयस्यार्थस्य काव्यलिङ्ग समर्थनम

जहाँ समर्थन के योग्य वस्तु का समर्थन किया जाता है, वहाँ काव्यलिङ्ग अलङ्कार होता है। इस श्लोक के प्रथम आधे भाग में किरात कहता है कि सेवक को हितकारी बात कहनी चाहिये और स्वामी को हितकारी बात सुननी चाहिये। इस सामान्य समर्थनीय वस्तु का समर्थन वह इस सामान्य वाक्य से

करता है कि जो राजा और मन्त्री सदा एक मत बने रहते हैं, उनके पास समृद्धियां सदा बनी रहती हैं। इस प्रकार समर्थन के योग्य सामान्य का सामान्य से समर्थन करने के कारण यहां काव्यलिङ्ग अलङ्कार है अथवा—

काव्यलिङ्गं हेतोर्वाक्यपदार्थता।

जहां वाक्यों और पदों के अर्थ हेतु रूप से कहे जाते हैं, वहां काव्यलिङ्ग अलङ्कार होता है। यहां स किंसखा और हिताम्न य वाक्यों के अर्थ सदानुकूलेषु सर्वसम्पद वाक्य के हेतु रूप से कहे गये हैं इसलिये यहां काव्यलिङ्ग अलङ्कार है।

छन्द— वंशस्थ।

विशेष ध्यान—कवि का उपदेश है कि राजा और मन्त्रियों के एक मत और सद्भाव से राज्य की स्थिरता और समृद्धि बनी रह सकती है।

घण्टापथ टीका—स इति। य सखाऽमात्यादिरधिप स्वामिनं साधु हितं न शास्ति नोपदिशति। 'अनुशास्मि'— इत्यादिना शासेर्दुहादिपाठाद् द्विकर्मकत्वम्। स हितान्नोपदेष्टा। कुत्सित सखा किंसखा। दुम नीत्यर्थ। किम क्षेपे इति समासान्तप्रतिषेध। तथा य प्रभुर्निग्रहानुग्रहसमर्थ स्वामी हितादाप्तजनाद्धितोपदेष्टु परान्मुखाद्। 'आख्यातोपयोगे' इत्यपादानात्पञ्चमी। न शृणोति न शृणोति। नेत्यर्थः शृण । 'सत्ता गुप्तिच्छिद्र'—इत्यादिना सम्पूर्वाच्छृणोतेरकर्मकादात्मनेपदम्। शृणोतिरकर्मकत्व नवदिवम। स हितमश्रोता प्रभु किंप्रभु कुत्सितस्वामी पूर्ववत्समास। सर्वथा सचिवेन वक्तव्य श्रोतव्य स्वामिना च। एव राजमन्त्रिणोरेकमत्य स्थाप्येत्यर्थ ऐकमत्यस्य फलमाह—सदेति। हि यस्मात् नृपेषु स्वामिषु राजा सह भवा अमात्यास्तेषु च। 'अव्यात्यप' अनुकूलेषु परस्परानुरक्तेषु सर्वसम्पद सदा रतिमनुराग कुरुते। न जातु जहतीत्यर्थ।' ततो मया वक्तव्य त्वया च श्रोतव्यमिति भाव। अत्र राजमन्त्रिणोर्हितानुपदेशतदश्रवणानि दासामर्थ्यसिद्धिरैकमत्यलक्षणकारणस्य निर्दिष्टस्य सर्वसम्पत्सिद्धिरूपकार्येण समर्थनात्कार्येण कारणसमर्थनरूपोऽर्थान्तरन्यासोऽलङ्कार। तदुक्तं सामान्यविशेषकार्यकारणभावाभ्यां निर्दिष्टप्रकृतसमर्थनमर्थान्तरन्यास ॥५॥

प्रकरण—राजा और अमात्यो मे एक मत बना रहने से ही राज्य की समृद्धि बनी रह सकती है, इस बात को कह कर वनेचर स्वामी के प्रति विनय को प्रकट करता है—

निसर्गदुर्बोधमबोधविक्लवा
क्व भूपतीना चरित क्व जन्तव ।
तवानुभावोऽयमवेदि यन्मया
निगूढतत्त्व नयवर्त्म विद्विषाम ॥६॥

अन्वय—क्व भूपतीनाम् निसर्गदुर्बोधम् चरितम् । क्व अबोध विक्लवा जन्तव । अयम् तव अनुभाव यत् मया विद्विषाम् निगूढ तत्त्वम् नयवर्त्म अवेदि ।

संस्कृत व्याख्या—'क्व' कुत्र 'भूपतीना' नृपाणा 'निसर्गदुर्बोध' निसर्गेण स्वभावेन दुर्बोध दु खेन कष्टेन वा बुध्यते अधिगम्यते इति तादृश दुर्ज्ञेयमिति भाव चरित' वृत्त वर्तते । क्व' कुत्र च अबोधविक्लवा ' अबोधेन अज्ञानेन विक्लवा विह्वला 'जन्तव ' प्राणिन साधारणा जना इत्यर्थ सन्ति । 'अयम' एष तव भूपते तव 'अनुभाव ' प्रभाव कृपा वा अस्ति यत् मया साधारणेन किरातेन ,विद्विषा' शत्रूणा दुर्योधनादीना 'निगूढतत्त्व' निगूढम अतिगुप्त तत्त्व याथार्थ्य यस्य तत 'नयवर्त्म' नयस्य नीते वर्त्म मार्ग षाड गुण्यादिप्रयोग 'अवेदि' विज्ञातम ।

हिन्दी अर्थ—कहा तो राजाओ का स्वभाव से ही कठिनाई से जाना जा सकने वाला चरित्र है कहा अज्ञान से विमूढ साधारण जन है । यह आपका ही प्रभाव है, जो मैने शत्रुओ के अतिगुप्त रहस्यो वाले नीति के मार्ग को जान लिया हैं ।

भाव—राजाओ के चरित अर्थात् उनके विचारो और व्यवहार को सामान्य जन के लिए जानना बहुत कठिन होता है । अत्यधिक शिक्षित व्यक्ति भी इनकी यथार्थता को नही जान सकते । अत मुझ जसे अज्ञानी वनेचर के लिये राजा दुर्योधन के चरित को जानना कैसे सम्भव था ? तो भी मैंने

उसकी जो गुप्त नीतियो को जान लिया, वह आपके प्रभाव के कारण ही सम्भव हो सका है।

वाच्यपरिवतन—क्व भूपतीना निसगदुबधिन चरितेन भूयते। क्व अबोधविक्लवै जन। अय तव अनुभाव यद् अह विद्विषा निगूढतत्व नयवत्म विदितवान।

टिप्पणियाँ

निसगदुर्बोधम—निसर्गेण दुर्बोधम्। तृतीया तत्पुरुष समास। नि+सृज्+घञ=निसग। दुर+बुध+घञ=दुर्बोध। अबोधविक्लव—अबोधेन विकलवा। तृतीया तत्पुरुष समास। बुध+घञ=बोध। न बोध=अबोध। वि+क्लु+अच=विक्लव। भूपतीनाम—भुव पति भूपति। षष्ठी तत्पुरुष समास। षष्ठी विभक्ति का बहुवचन=भूपतीनाम। चरितम—चर्+क्त=चरित। क्व—कस्मिन के अथ मे किम्+अत्=क्व। अनुभाव—अनुभूयते अथ मे अनु+भू+घञ=अनुभाव। अवेदि—विद् धातु से कम से लुङ् लकार प्रथम पुरुष का एकवचन। निगूढतत्वम—निगूढ तत्व यस्मिन् तत। बहुव्रीहि समास। नि+गुह+क्त=निगूढ। तत्+त्व=तत्व। नयवत्म—नयस्य वत्म। षष्ठी त पुरुष समास। नीयते+अनेन अथ मे नी+अच=नय। विद्विषाम—द्वेष्टि अथ म वि+द्विष्+क्विप=विद्विष्। षष्ठी विभक्ति का बहुवचन=विद्विषाम।

अलकार—विषम और उदात्त। विषम अलकार का लक्षण—

विषम वण्यते यत्र घटनाननुरूपयो

जहा दो परस्पर विरुद्ध वस्तुओ का साथ साथ वणन किया जावे, वहा विषम अलकार होता है। यहा राजाओ और सामा य जनो के परस्पर विरुद्ध चरितो का वणन करने से विषम अलकार है। उदात्त का लक्षण—

उदात्त वस्तुन सम्पद महता चोपलक्षणम

जहा वस्तुओ की समृद्धि या महान पुरुषो के प्रभाव का वर्णन किया जावे, वहाँ उदात्त अलकार होता है। यहाँ युधिष्ठिर का महान् प्रभाव दिखलाया जाने के कारण उदात्त अलकार है।

छन्द—वंशस्थ।

विशेष कथन—कवि का कहना है कि राजाओं को अपने चरित्र और व्यवहार को सामान्य जनों से दुर्ज्ञेय रखना चाहिये। ऐसा न होने पर राजा की सब गुप्त बातें खुल जाती हैं। उनकी नीतियां गुप्त रहनी चाहियें, जिनको मात्र विश्वासी व्यक्ति ही जान सकें। राजा की नीतियों का छः गुणों—सन्धि, विग्रह, यान, आसन, संश्रय और द्वैधीभाव तथा चार उपायों—साम, दान, दण्ड और भेद से युक्त होना है।

घण्टापथ टीका—निसर्गेति। निसर्गदुर्बोधं स्वभावदुर्ग्रहम्। 'ईषद्दु'—इत्यादिना खल्प्रत्ययः। भूपतीनां चरितं चेष्टितम्। अबोधविक्लवा अज्ञानेन कातरा जन्तवः। मादृशाः पामरजना इत्यर्थः। क्व नाभिसंघटत इत्यर्थः। तथापि निगूढतत्त्वं संवृतयाथार्थ्यं निद्रिवां नय…म षाड्गुण्यप्रयोगः 'सन्धिर्विग्रहयानानि, संस्थाप्यासनमेव च द्वैधीभावश्च विज्ञेयाः षड्गुणा नीतिवेदिनाम्'॥ …स्या दिरूपो यः मय …। ज्ञातमि…। यान्त। विदेः कर्मणि …। अथवा …द वेद्यमित्यर्थः। विधेयतावाया यात पुंलिङ्गनिर्देशः। तानानुगाः … सामर्थ्यम्। अनुगतो भावो नुभाव इति घञन्त प्रादिसमासः। न तु …द घञ् प्रत्ययः। 'निणीभुजोऽनुपसर्गे' इत्यनुपसर्गाद्भवतेर्घञ्विधानात्। अत एव काशिका याम्—'कथं प्रभावो राज्ञः प्रकृष्टो भाव इति प्रादिसमासः' इति। दोषपरिहारी सम्यगज्ञात्वैव विज्ञापयामि। न तु वृथा कर्णकठोरं प्रलपामीत्याशयः॥६॥

प्रकरण—धृष्टता के लिये क्षमा माँग कर और अपनी विनयशीलता प्रदर्शित करके किरात कुरु देश का समाचार बताना आरम्भ करता है। सबसे पहले वह दुर्योधन राज्य की स्थिरता के लिये क्या कर रहा है, इस बात को बताता है—

विशङ्कमानो भवतः पराभवं
नृपासनस्थोऽपि वनाधिवासिनः।
दुरोदरच्छद्मजितां समीहते
नयेन जेतुं जगतीं सुयोधनः॥७॥

अन्वय—नृपासनस्थ अपि सुयोधन वनाधिवासिन भवत पराभवम् विशङ्कमान दुरोदरच्छद्मजिताम् जगतीम् नयेन जेतुम् समीहते ।

संस्कृत व्याख्या— नृपासनस्थ ' नृपस्य राज्ञ आसने सिंहासने इत्यर्थ स्थित उपविष्ट अपि सुयोधन धृतराष्ट्रस्य पुत्र दुर्योधन 'वनाधिवासिन ' वनम् शरण्यम अधिवसति इति तस्मात् राज्यभ्रष्टादपि भवत 'पराजय' पराभव विशङ्कमान ' उत्प्रेक्षमाण 'दुरोदरच्छद्मजिता दुरोदरस्य द्यूतस्य छद्मना कपटेन जिता स्वायत्तीकृता 'जगती' पृथिवी 'नयेन' नीत्या जेतु ' वशीकर्तुं 'समीहते' इच्छति ।

हिन्दी अर्थ—राजसिंहासन पर बैठा हुआ भी वह दुर्योधन वन मे रहने वाले आपसे पराजय की आशंका करता हुआ जुए के छल से जीती हुई पृथिवी को नीति द्वारा अपने वश मे रखना चाहता है ।

भाव—दुर्योधन ने द्यूत छल करके आपसे राज्य तो जीत लिया, किन्तु वह आपके पराक्रम और शील से भयभीत है । वह डरता है कि वनवास और अज्ञातवास की अवधि व्यतीत होने के बाद आपको राज्य वापिस न करना पड़े । यदि वह ऐसा नही करेगा तो आप बलपूर्वक उससे राज्य को छीन लेगे और युद्ध होने पर उसकी पराजय होगी । राजकर्मचारी और प्रजा भी आपके गुणो को याद करके आपकी ओर हो जावेगी । इसलिए वह नीति का प्रयोग करके, राजकर्मचारियो और प्रजा को प्रसन्न करके राज्य को अपने वश मे रखना चाहता है ।

वाच्यपरिवर्तन—नृपासनस्थेन अपि सुयोधनेन भवत पराभव विशङ्कमानेन दुरोदरच्छद्मजिता जगती नयेन जेतु समीह्यते ।

टिप्पणियाँ

विशङ्कमान —वि + शङ्क + शानच्=विशङ्कमान । भवत —भू + शतृ =भवत । पञ्चमी विभक्ति का एकवचन=भवत । 'भीत्रार्थाना भयहेतु ' सूत्र से भवत मे पञ्चमी विभक्ति हुई । डरना और रक्षा करने के अर्थ मे प्रयुक्त होने वाली धातुओ के योग मे भय के हेतु मे पञ्चमी विभक्ति होती है ।

यहा दुर्योधन के भय के हेतु भवत मे पञ्चमी विभक्ति हुई । **पराभवम्**—परा +भू+अच्=पराभव । **नृपासनस्थ**—नृपस्य आसन नृपासन सिंहासनम । तस्मिन स्थित अर्थ मे नृप+आसन+स्था+क=नृपासनस्थ । **वनाधिवासिन**—वनम् अधिवसति इति तस्मात अर्थ मे वन+अधि+वस्+इनि=वनाधिवासिन । पञ्चमी विभक्ति का एकवचन वनाधिवासिन । भवत का विशेषण होने से पञ्चमी विभक्ति हुई । **दुरोदरच्छद्मजिताम** दुरोदरस्य छद्मेन जिताम् । षष्ठी तत्पुरुष और तृतीया तत्पुरुष समास । दुष्टम का समन्तात् उदर यस्य तत अर्थ मे दुर+आ+उदर=दुरोदर । जि+क्त+टाप=जिता । जेतुम—जि+तुमुन । सुयोधन—सु+युध+ल्युट (अन)=सुयोधन ।

अलकार—काव्यलिङ्ग ।

नीति द्वारा पृथिवी को जीतने का प्रयत्न कर रहा है, इस वाक्य के हेतु के रूप मे वह आपसे भयभीत है इन पदो के अर्थों को प्रस्तुत किया गया है । अत यहा काव्यलिङ्ग अलकार है ।

छन्द—वशस्थ ।

विशेष कथन—कवि का कहना है कि राज्य को प्राप्त कर लेने की अपेक्षा उसकी रक्षा करना और सत्ता को सुदृढ बनाये रखना अधिक कठिन होता है । नीति का प्रयोग करके एव राजकर्मचारियो और प्रजा को सतुष्ट करके ही राजसत्ता को सुदृढ बनाया जा सकता है ।

घण्टापथ टीका—विशङ्कमान इति सुखेन युध्यते सुयोधन । 'भाषाया शासियुधिदृशिधृषिमृषिभ्यो युज्वाच्य' । नृपासनस्थ सिंहासनस्थोऽपि । वन मधिवसतीति वनाधिवासिनो वनस्थात । राज्यभ्रष्टादपीत्यर्थ । भवतस्त्वत्त पराभव पराजय विशङ्कमान उत्प्रेक्षमाण सन् । दुष्टमुदरमस्येति दुरोदर द्यूतम । पृषोदरादित्वात्साधु । 'दुरोदरो द्यूतकारे पणे द्यूते दुरोदरम' इत्यमर । तस्यच्छद्मना मिषेण जिता लब्धा दुरायजिता जगती मही । 'जगती विष्टपे मह्या वास्तुच्छन्दोविशेषयो' इति वैजयन्ती । नयेन नीत्या जेतु वशीकर्तु समीहते व्याप्रियते । न तूदास्त इत्यर्थ । बलवत्स्वामिकम् विशुद्धागम च धन

भुञ्जानस्य कुतो मनस समाधि इति भाव । अत्र दुरादरच्छद्मजितामं इति विशेषणद्वारेण पदार्थेन चतुर्थपदार्थप्रतिहेतुत्वेनाप यासात द्वितीयकाव्यलिङ्ग-मलकार । तदुक्त —'हेतोर्वाक्यपदार्थत्वे काव्यलिङ्गमुदाहृतम' ।।७।।

प्रकरण — वनेचर कुरुदेश के समाचार बता रहा है कि दुर्योधन नीतियो के प्रयोग द्वारा अपनी सत्ता को सुदृढ बनाने का प्रयत्न कर रहा है । अब वह उपायों को बताता है—

तथाऽपि जिह्म स भवज्जिगीषया
तनोति शुभ्र गुणसम्पदा यश ।
समुन्नयन्भूतिमनार्यसगमाद्
वर विरोधोऽपि सम महात्मभि ।।८।

अन्वय—तथा स जिह्म भवज्जिगीषया अनार्यसगमात भूतिम् समुन्नयन् अपि गुणसम्पदा शुभ्र यश तनोति । महात्मभि समम् विरोध अपि वरम् ।

संस्कृत व्याख्या—तथा अपि भवत पराभव विशङ्कमान स 'जिह्म कुटिल दुर्योधन 'भवज्जिगीषया' भव त जेतुमिच्छया गुणैरेव भव त जेष्यामि इति काम ।या 'अनार्यसगमात' अनार्याणा दुष्टाना शकुनिकर्णादिना सगमात सम्पर्काद् हेतो 'भूति' लोकस्य ऐश्वय समुन्नयन' प्रवर्धयन् अपि गुणसम्पदा गुणाना शौर्यदाक्षिण्यादीना सम्पदा सम्पत्या शुभ्र' निष्कलङ्क यश कीर्ति 'तनोति' विस्तारयति । 'महात्मभि ' उदारप्रकृतिक भवत्सदश पुरुषै 'सम' साध 'विरोध शत्रुत्वम् अपि 'वर' श्रेष्ठ भवति ।

हिन्दी अर्थ—आपसे पराजय की आशका करता हुआ वह कुटिल दुर्योधन आपको जीतने की इच्छा से दुष्ट मनुष्यों के ससग से ऐश्वय को बढ़ाता हुआ भी श्रेष्ठ गुणो की सम्पत्ति से अपने उज्ज्वल यश को विस्तृत कर रहा है । महान पुरुषों के साथ शत्रुता करना भी अच्छा होता है ।

भाव—वह दुर्योधन अत्यधिक कुटिल स्वभाव का है । आपको जीतना

ही उसका उद्देश्य है। इसलिये यद्यपि वह दुष्ट मनुष्यो, कर्ण, शकुनि आदि की सहायता से अपने कोप आदि को खूब बढा रहा है, तथापि वह अपने उज्ज्वल गुणो को भी प्रकट कर रहा है। बडो के साथ विरोध करना भी अच्छा होता है, क्योकि इससे नाम तो होता ही है।

वाच्यपरिवर्तन— तथा तेन जिह्मेन भवज्जिगीषया अनार्यसगमाद् भूति समुन्नयता अपि गुणसम्पदा शुभ्र यश तन्यते। महात्मभि सम विरोधेन अपि वरम।

टिप्पणीयाँ

भवज्जिगीषया—भवत जिगीषया। षष्टी तत्पुरुष समास। जेतुम् इच्छा अर्थ मे जि+सन+अ+टाप=जिगीषा। तृतीया विभक्ति का एकवचन=जिगीषया। **गुणसम्पदा**— गुणाना सम्पदा। षष्ठी तत्पुरुष समास। सम+पद्+क्विप=सम्पद्। तृतीया विभक्ति का एक वचन=सम्पदा। **समुन्नयन**— सम+उत+नी+शतृ=समुन्नयत। प्रथमा विभक्ति का एकवचन=समुन्नयन। **भूतिम**—भू+क्तिन=भूति। द्वितीया विभक्ति का एक वचन=भूतिम। अनार्यसगमात— अनार्याणा सगमात्। षष्ठी तत्पुरुष समास। ऋ+ण्यत=आर्य। जिनके कर्म श्रेष्ठ होते है, वे आर्य कहलाते है। न+आर्य=अनार्य। दुर्जन मनुष्य। सम्+गम+अप=सगम। **महात्मभि**—महान् आत्मा यस्य स महात्मा। बहुव्रीहि समास। तृतीया विभक्ति का बहुवचन=महात्मभि।

अलकार—अर्थान्तरन्यास और काव्यलिङ्ग।

वह दुर्योधन आप जैसे उदार प्रकृति के व्यक्ति को जीतना चाहता है, इस विशेष का महात्माओ के साथ विरोध करना भी अच्छा होता है, इस सामान्य से समर्थन किया जाने के कारण यहा अर्थान्तरन्यास अलकार है।

अनार्यो के सम्पर्क से वह ऐश्वर्य को बढा रहा है, इन पदो से अर्थों को विरोध का हेतु बना दिया जाने से यहाँ **काव्यलिङ्ग** अलकार है।

छन्द—वशस्थ

विशेष कथन—मल्लिनाथ ने इस पद्य मे 'समाप्तपुनरात्त दोष' बताया है, उसका कहना है कि 'स शुभ्र यश तनोति' इस वाक्य के समाप्त हो जाने के

बाद कवि ने दूसरा वाक्य 'समु नयन भूतिमनायसगमात' यह वाक्य प्रारम्भ कर दिया। यह वाक्य समाप्त नही हुआ। इसलिये यहा 'समाप्तपुनरात दोष है। परन्तु वस्तुत 'समु नयन भूतिगायसगमात' पहले ही वाक्य का ग्रश है, जसे कि सस्कृत व्याख्या और हिन्दी ग्रथ स स्पष्ट है। इसलिये यहा 'समाप्त पुनरात दोष' नही है।

महाकवि ने व्यक्त किया है कि तुछ न करने से महान व्यक्तियो के साथ विरोध करना भी अच्छा होता है क्योकि इसस मनुष्य को अपने को ऊपर उठाने का उत्साह मिलता है और उसका नाम तो होता ही है।

घण्टापथ टीका—तथाऽपीति। तथाऽपि साशकोऽपि। जिह्म—वक्र। वञ्चक इति यावत स दुर्यावनो मवज्जिगीषया। गुणभय तमाक्रमितुमिच्छये-त्यथ। 'हेतौ' इति तृतीया गुणसम्पदा दानदाक्षिण्यादिगुणगरिम्णा। करणेन। शुभ्र यशस्तनाति। स खलो गुणलोभनीया त्व मग्पदमात्मसात्कतु त्वत्तोऽपि गणवत्तामात्मन प्रकटयति इत्यथ। न चेव गुणिन सताऽपि सज्जनविरोधो महानस्त्यस्य दोष इत्याशङ्क्य सोऽपि सत्ससगालाभे नीचमगमाद् वरमुत्कर्षावह-त्वादित्याह—रामिति। तथा हि। भूति समु नय नुत्कषमापादयन। लट शतृ क्षा णचौ'—इत्यादिना शतृपत्यय। पनलङ्ग्रहणमामर्थ्यात्प्रथमासामानाधिकर ण्यम। महात्मभि समम। सहेत्यथ। साक सत्रा सम सह' इत्यमर। अनाय सगमाद् दुजनससगात्। 'पञ्चमी विभक्ते इति पञ्चमी। विरोधोऽपि वर मनाक्प्रिय। 'देवाद्वृते वर श्रेष्ठे त्रिषु क्लीब मनाक्प्रिय' इत्यमर। अन मैत्र्यपेक्षाया मनाक्प्रियत्व विरोधस्य भूति समु नयन इत्यस्य पूर्ववाक्या वय समाप्तस्य वाक्यार्थस्य पुनरादानात्समाप्तपुनरात्तात्यदोषापत्ति। तदुक्त काव्यप्रकाशे –'समाप्तपुनारादानात्साप्तपनरात्तकम' इति। न च वाक्यान्तर-मेतत्। येनोक्तदोषपरिहार स्यात। अर्थान्तरन्यासालङ्कार। स च भूतिसमु न यनस्य पदार्थविशेषणद्वारा विरोधस्य प्रति हेत्वभिधानरूपकाव्यलिङ्गानुप्राणित इति ॥८॥

***

प्रकरण—युधिष्ठिर पर विजय प्राप्त करने के लिये दुर्योधन द्वारा किये जाने वाले उपायों का वनेचर वर्णन कर रहा है कि उसने गुणों का विस्तार किया है तथा प्रभूत धन एकत्रित कर लिया है। वह नीति और बल दोनों का आश्रय ले रहा है—

> कृतारिषड्वर्गजयेन मानवी-
> मगम्यरूपां पदवीं प्रपित्सुना।
> विभज्य नक्तंदिवमस्ततन्द्रिणा
> वितन्यते तेन नयेन पौरुषम् ॥९॥

अन्वय—कृतारिषड्वर्गजयेन अगम्यरूपाम् मानवीम् पदवीम् प्रपित्सुना अस्ततन्द्रिणा तेन नक्तंदिवं विभज्य नयेन पौरुषम् वितन्यते।

संस्कृत व्याख्या—'कृतारिषड्वर्गजयेन' कृतः विहितः अरीणाम् अन्तः शत्रूणां षण्णां वर्गस्य काम क्रोध लोभ मद मोह मत्सराणां जयः विजयः येन तेन कामक्रोधादीनां हृदयान्तः शत्रूणां विजेता 'अगम्यरूपाम्' अगम्यं दुष्प्राप्यं रूपं स्वरूपं यस्याः ताम् 'मानवीं' मनुसम्बन्धिनीं 'पदवीं' पद्धतिं प्रजापालनमार्गं 'प्रपित्सुना' प्राप्तुमिच्छुकेन 'अस्ततन्द्रिणा' अस्ता निरस्ता तन्द्रिः आलस्यं येन तेन सततं जागरूकेण इत्यर्थः, तेन दुर्योधनेन 'नक्तंदिवं' रात्रौ च दिवा च अहर्निशं 'विभज्य' विभागं कृत्वा अस्मिन् समये मया इदं कार्यम् इति निश्चित्य 'नयेन' नीत्या 'पौरुषं' पुरुषार्थं 'वितन्यते' विस्तार्यते।

हिन्दी अर्थ—काम, क्रोध, लोभ, मोह, मद और मत्सर इन छः अन्तः शत्रुओं को जीतने वाला, मनुष्यों द्वारा न जानी सकने वाली मनु द्वारा प्रतिपादित प्रजा के पालन की पद्धति को प्राप्त करने की इच्छा वाला, आलस्य का परित्याग करने वाला वह दुर्योधन दिन और रात में किये जाने वाले कार्यों को बांटकर अपनी नीति द्वारा पुरुषार्थ का विस्तार कर रहा है।

भाव—उस दुर्योधन ने काम आदि छः शत्रुओं को वश में कर लिया है। वह मनु द्वारा बताई गई पद्धति से प्रजा का पालन करने का प्रयत्न कर रहा

है। आलस्य को उसने दूर कर दिया है। इस कार्य को किस समय करना है, इसका उसने विभाजन कर लिया है। यह केवल नीति पर या केवल सैन्य बल पर ही आश्रित नहीं है। वह नीति द्वारा सैन्यबल का संचालन करता है।

वाच्यपरिवर्तन—कृतारिषड्वर्गजय अगम्यरूपां मानवीं पदवीं प्रपित्सु अस्ततन्द्रि स नक्तंदिवं विभज्य नयेन पौरुषं वितनोति।

टिप्पणियाँ

कृतारिषड्वर्गजयेन—कृत अरीणां षण्णां वर्गस्य जयः येन तस्य। तत्पुरुष से गर्भित बहुव्रीहि समास। कृ+क्त=कृत। जि+अच्=जय। **मानवीम्**- मनो इयम् अर्थ में मनु+अण्+ङीप्=मानवी। द्वितीया विभक्ति का एकवचन=मानवीम्। **अगम्यरूपाम्**—अगम्यं रूपं यस्याः ताम्। बहुव्रीहि समास। गम+यत=गम्य। न+गम्य=अगम्य। अगम्य+रूप+टाप्=अगम्यरूपाम्। द्वितीया विभक्ति का एकवचन=अगम्यरूपाम्। **पदवीम्**—पद्+अवि+ङीप्=पदवी। द्वितीया विभक्ति का एकवचन=पदवीम्। **प्रपित्सुना**—प्र+पद+सन+उ=प्रपित्सु। तृतीया विभक्ति का एक वचन—प्रपित्सुना। विभज्य। वि+भज+क्त्वा (ल्यप्)। **नक्तंदिवम्**—नक्तं च दिवा च। द्वन्द्व समास। समासान्त अच प्रत्यय होकर 'अचतुरविचतुर' सूत्र से निपातन द्वारा नक्तं दिवम रूप बनता है। **अस्ततन्द्रिणा**—अस्ता तन्द्रिः येन तेन। बहुव्रीहि समास। अस+क्त=अस्त। तद्+क्रिन=तन्द्रि। **पौरुषम्**—पुरुषस्य इदं कर्म अर्थ में पुरुष+अण्=पौरुष।

छन्द—वंशस्थ।

विशेष कथन महाकवि भारवि ने इस श्लोक में राजा के लिए निम्न उपदेश दिए हैं—

१ राजा को काम, क्रोध, लोभ, मोह, मद, ईर्ष्या इन छः शत्रुओं को अपने वश में रखना चाहिये।

२ राजा को चाहिये कि वह प्रजा पर मनु द्वारा बताई गई पद्धति से शासन करे।

३ राजा को सदा सावधान रहना चाहिये। आलस्य का सर्वथा परित्याग कर देना चाहिये।

४ राजा को प्रत्येक कार्य का समय निश्चित कर लेना चाहिए और उसके अनुसार कार्य करना चाहिये।

५ शासन का संचालन केवल नीति से ही अथवा केवल सैन्यबल से ही नहीं होता। परन्तु शासन की सुदृढ़ता के लिए नीति से सैन्यबल का संचालन होना चाहिए।

घण्टापथ टीका—कृतेति। षण्णां वर्गः षड्वर्गः। अरीणामन्तः शत्रूणां षड्वर्गोऽरिषड्वर्गः। शिवभागवतवत्समासः। तस्य जयः कृतो येन तेन तथोक्तेन। विनीतेनेत्यर्थः। विनीताधिकारः प्रजापालनमिति भावः। अगम्य रूपां पुरुषमात्रदुष्प्राप्याम्। मनोरिमां मानवीम्। मनूपदिष्टसदाचारक्षुण्णा मित्यर्थः। पन्थां प्रजापालनपद्धतिं प्रपित्सुना प्रपत्तुमिच्छुना। प्रपद्यते। स च तादृग् यथ 'सनि मीमा'—इत्यादिनेसादेशः। 'अत्र लोपोऽभ्यासस्य' इत्य भ्यासलोपः। गस्ता तद्विरालस्य गस्य तेनास्तन्द्रिणा। अनलसेनेत्यर्थः। तद्रिरस्तौत्रो धातुः। तस्मात्। 'तन्द्रयादश्च' इत्यौणादिकः क्रिः प्रत्ययः कृदिकारादक्तिनो वा ङीष वक्तव्य इति। 'वह्नीघटालरीत द्रीति ङीष तोऽपि' इति क्षीरस्वामी। तथा रामायणे प्रयोगः—'तन्द्रीं द्रव्यमतश्च रादोषपरक्षोपचिद' इति। तेन दुर्योधनेन पुरुषस्य कर्म पौरुषं पुरुषकारः, उद्योग इति यावत्। युवादित्वादण् प्रत्ययः। 'पौरुषं पुरुषस्योक्तं भावे कर्मणि तेजसि' इति विश्वः। नक्तं च दिवा च नक्तंदिवम्। अहोरात्रयोरित्यर्थः। 'अचतुर' इत्यादिना सप्तम्यर्थवृत्त्योरव्ययोर्द्वन्द्वनिपातश्च समासान्तः। विभज्यास्या वेलायामिदं कर्मेति विभागं कृत्वा नयन नीत्या वितं यशो विस्तायते ॥९॥

*****

प्रकरण—वनेचर कह रहा है कि राजा दुर्योधन राज्य को सुदृढ़ करने के लिए नीति और पुरुषार्थ दोनों का पालन कर रहा है। इसके अतिरिक्त राज्य को दृढ़ बनाने के लिये वह सबको, मित्रों और स्वजनों को भी अनुकूल बनाये हुए है—

सखीनिव प्रीतियुजाऽनुजिविन
समानमानान्सुहृदश्च बन्धुभि ।
स सन्तत दर्शयते गतस्मय
कृताधिपत्यामिव् साधु बन्धुताम् ॥१०॥

अन्वय– गतस्मय स सन्ततम् अनुजीविन प्रीतियुज सखीन् इव सुहृद च बन्धुभि समानमानान्, बन्धुताम् कृताधिपत्याम् इव च साधु दर्शयते।

संस्कृत व्याख्या गतस्मय' गत निरस्त स्मय अहकार यस्य स निरहकार स दुर्योधन 'सततम अनवरतम 'अनुजीविन' सेवकान 'प्रीतियुज' प्रीत्या स्नेहेन युज्यते इति तान स्निग्धान सखीन मित्राणि इव, 'सुहृद' मित्राणि च 'बन्धुभि' स्वजन समानमाना । समान तुल्य मान आदर येषा तथाभूतान इव बन्धुता' स्वजनान च कृताधिपत्या' कृत स्वीकृतम् आधिपत्य प्रभुत्व यया तथाभूतान इव 'साधु' सम्यक प्रकारेण 'दर्शयते' निरूप्यते ।

हिन्दी अर्थ—अहकार से शून्य होकर वह दुर्योधन सेवको को उसके स्नेही मित्रो के समान, मित्रो को उसके स्वजन आदर पाने वाले सम्बन्धियो के समान और सम्बन्धियो को मानो उसके आधिपत्य ही स्वीकार कर लिया हो, इस प्रकार अच्छी तरह से निरन्तर प्रदर्शित करता है।

भाव—दुर्योधन ने अहकार का परित्याग कर दिया है। सेवको के साथ वह इस प्रकार का व्यवहार करता है कि वे अपने आपको उसका स्नेही मित्र समझते है। मित्रो के साथ वह इस प्रकार का व्यवहार करता है कि वे अपने आपको उसका बन्धु समझते है। बन्धुओ के साथ वह इस प्रकार का व्यवहार करता है कि वे समझते है कि मानो दुर्योधन ने उनका प्रभुत्व ही स्वीकार कर लिया हो।

वाच्यपरिवर्तन— गतस्मयेन तेन सन्तत अनुजीविन प्रीतियुज सखाय इव सुहृद बन्धुभि समानमाना, बन्धुता च कृताधिपत्या इव साधु दर्शयते।

टिप्पणियाँ

सखीन—सह समानं ख्यायते अर्थ मे सह+ख्या+डिन=सखि। द्वितीया विभक्ति का बहुवचन=सखीन । प्रीतियुज—प्रीत्या युज्य ते अर्थ मे प्रीति+युज्+क्विप=प्रीतियुज । द्वितीया विभक्ति का बहुवचन=प्रीतियुज । अनुजीविन—अनुजीवितु शील येषा ते, ताच्छील्य अर्थ मे णिनि प्रत्यय । अनु+जीव+णिनि=अनुजीविन । द्वितीया विभक्ति के बहुवचन मे=अनुजीविन । समानमानान्—समान मान येषा ते । बहुव्रीहि समास । सम+अन+अण=समान । मान+घञ=मान । सुहृद=सु शोभन हृदय यषा तान् 'सुहृद्दुर्हृदौ मित्रामित्रयो' सूत्र से निपातन द्वारा मित्र अर्थ मे सुहृद रूप बना । बन्धुभि—बन्ध+उ=बन्धु । तृतीया विभक्ति का बहुवचन=बन्धुभि । सन्ततम—सम+तन+क्त=सन्तत । दर्शयते—दश+णिच लट लकार प्रथम पुरुष का एकवचन । यहा प्रेरणा अर्थ मे णिच होता है क्योकि क्रिया का फल कर्ता गर्वित दुर्योधन को मिला है अत दर्शयते म आत्मनेपद हुआ । अणिजन्तावस्था के कर्ता की णिजन्तावस्था म कर्म सज्ञा होती है । अनुजीविन पश्यन्ति स अनुजीविन दर्शयते, इस प्रकार दृश धातु की अणिजन्तावस्था पश्यन्ति के कर्ता अनुजीवि आदि की दर्शयते इस णिजन्तावस्था मे कर्म सज्ञा होकर द्वितीया विभक्ति हुई । गतस्मय—गत स्मय यस्य स । बहुव्रीहि समास । स्मि+अच=स्मय । कृताधिपत्याम—कृत आधिपत्य यया ताम । बहुव्रीहि समास कृ+क्त=कृत अधि पाति इति अधिप । अधिपस्य भाव अर्थ मे अधिप+यक=आधिपत्य । बन्धुताम—बन्धूना समूह, समूह अर्थ मे 'ग्रामजनबन्धुभ्यस्तल्' सूत्र से तल् प्रत्यय । बन्धु+तल्+टाप बन्धुता ।

अलकार—उत्प्रेक्षा और एकावली । उत्प्रेक्षा अलकार का लक्षण—

सभावनमथोत्प्रेक्षा ।

उपमेय की उपमान के रूप मे सभावना किये जाने पर उत्प्रेक्षा अलकार होता है । इस पद्य मे अनुजीवि आदि के मित्र आदि के रूप म सभावना किये जाने से उत्प्रेक्षा अलकार है एकावली अलकार का लक्षण—

स्थाप्यतेऽपोह्यते वापि यथापूर्व पर परम ।
विशेषणतया वस्तु यत्र सैकावली द्विधा ॥

उत्तर--उत्तर वस्तु क पूव पूव वस्तु के विशेषण के रूप मे विधान या निषेध करन पर एकावली अलकार होता है। यहा अनुजीवियो के विशेषण के रूप म मित्रो को, मित्रो के विशेषण रूप म ब धुओ को और ब धुओ के विशेषण के रूप मे कुलस्वाधिपत्य को प्रस्तुत किया जाने स एकावली अलकार है।

छ द—वशस्थ।

विशेष कथन--इस श्लोक के द्वारा भारवि ने यह उपदेश दिया है कि स्वामी को चाहिये कि वह सेवको आदि के प्रति अत्यधिक स्नेह और आदर का व्यवहार करे। व समझे कि राजा उनको अत्यधिक स्नेही और आदर का पात्र समझता है। इसम वे राजा के प्रति अनुरक्त रहगे और उसके लिय प्राणो को त्यागने के लिये भी सदा उद्यत रहग।

घण्टापथ टीका--सखीनिति। गतस्मयो निरहकारोऽत एव स दुर्योधन। स ततमनारत साधु सम्यक। अकपटमित्यथ। अनुजीविनो भृत्यान। प्रीतियुज स्निग्धान सखीनिव मित्राणीव। दशयते। लोकस्येति शेष। 'हेतुमिति च' इति णिच। णिचश्च' इत्यात्मनेपदम। शोभन हृदय येषा तान सुहृदो मित्राणि च सुहृद्दुहृदौ मित्रामित्रयो' इति निपात। ब धुभिर्भ्रात्रादिभि समानमानान् तुल्यसत्कारान दशयते। ब धुना समूहा ब धुता ताम। ग्राम जनब धुभ्यस्तल'। कुलमाधिपत्य स्वाम्य यस्यास्ता कुलाधिपत्यामिव दशयते। ब धूनधिपतीनिव दशयतीत्यथ। यथा भृत्यादिषु सख्यादिबुद्धिर्जायते लोकस्य तथा ता सभावयतीत्यथ। अनुजीव्यादीना 'कतु रीप्सिततम कम' इति कम त्वम्। पूर्वं त्वतस्मिन्नेव पदा वये वाक्याथमित्थ वणयन्ति--स राजाऽनुजीव्यादी सख्यादीनिव दशयते। सख्यादय इव ते तु त पश्यन्ति। सख्यादिभावेन पश्यतस्तास्तथा दशयते। स्वयमेव छ दानुवर्ति तथा स्वदशन तेभ्य प्रयच्छतीत्यथ। अर्थात्तस्येप्सितकमत्वम्। अणि कतु रनुजीव्यादे 'अभिवादिदृशोरा त्मनेपदमुपसख्यानम' इति पाक्षिक कमत्वम। एव चात्राण्य तकमणो राज्ञोऽण्य ते कतृत्वेऽपि आरोह्यते हस्ती स्वयमेव इत्यादिवदश्रूयमाणकर्मा तरत्वा भावान्नाय णेरणादिसूत्रस्य विषय इति मत्वा 'णिचश्च' इत्यात्मनेपद प्रति-

पेन्दिरे । भाष्य तु प्रेरणाभिसन्धिविषयत्वमप्यस्योक्तम । यथाऽऽह—पश्यन्ति भृत्या राजानं', 'दर्शयते भृत्यान राजा', अत्रात्मनेपद सिद्ध भवति इति । आह कयट —'ननु कर्मान्तरसद्भावादनात्मनेपदेन भाव्यम् उच्यते'—अस्मादेवोदाहरणाद्भाष्यकारस्यायमेवाभिप्राय ऊह्यते—'अण्यन्तावस्थाया ये कर्तृ कर्माणि तद्व्यतिरिक्तकर्मान्तरसद्भावादात्मनेपद न भवति' । यथा—स्थल गाराह्वति मनुष्यान इति । इह ण्यन्तावस्थाया कर्तृणा भृत्याना णौ कर्तृत्वमिति भवत्येवात्मनेपदमिति ॥१०॥

प्रकरण—दुर्योधन के गुणों का वर्णन करते हुए ही वनेचर बताता है कि वह धर्म अर्थ और काम इन तीन पुरुषार्थों को उचित प्रकार से सिद्ध कर रहा है—

असक्तमाराधयतो यथायथ
विभज्य भक्त्या समपक्षपातया ।
गुणानुरागादिव सख्यमीयिवान्
न बाधतेऽस्य त्रिगण परस्परम् ॥११॥

अन्वय—यथायथम् विभज्य समपक्षपातया भक्त्या असक्तम् आराधयत अस्य त्रिगण गुणानुरागाद् इव सख्यम् ईयिवान् परस्परम् न बाधते । (धर्म, अर्थ, काम) ...

संस्कृत व्याख्या—'यथायथ' यथायोग्य सम्यग विविच्य इत्यर्थ 'विभज्य' कार्यारण परस्पर विभाग कृत्वा 'समपक्षपातया' सम समान पक्षे पात आसक्तिविशेष यस्य तया 'भक्त्या' अनुरागविशेषेण 'असक्तम' अनासक्तरूपेण निरन्तर वा 'आराधयत' सेवमानस्य सर्वान प्रति तुल्येन एव अनुरागेण व्यवहरत इत्यर्थ अस्य दुर्योधनस्य 'त्रिगण' धर्मार्थकामाना गण 'गुणानुरागाद् इव' दुर्योधनस्य गुणेषु स्नेहाद् इव गुणित्वाद अस्य दुर्योधनस्य आश्रय उचित इति स्नेहादिव 'सख्य मित्रताम् 'ईयिवान्' प्राप्तवान 'परस्परम' अन्योऽन्य न

'बाधत' विरुद्धा भवति । परस्परविरुद्धानपि धर्मार्थकामान् दुर्योधनः स्वकुशल व्यवहारेण नित्यं वर्द्धयति इति भावः

हिन्दी अर्थ—ठीक ठीक प्रकार से कार्यों को बाँट कर समान पक्षपात युक्त अनुराग से आराधना करते हुये उस दुर्योधन के धर्म, अर्थ और काम आदि गुणों के प्रति प्रेम के कारण मित्रता को प्राप्त होकर एक दूसरे का विरोध नहीं करते।

भाव—दुर्योधन धर्म, अर्थ और काम इन तीनों पुरुषार्थ को समान भाव से बढ़ा रहा है। उसने सभी कार्यों के लिये समय आदि का उचित प्रकार से विभाजन कर दिया है। इसलिये यद्यपि ये तीनों एक दूसरे के विरोधी हो सकते हैं, तथापि दुर्योधन ने कुशलता से ऐसा प्रबन्ध किया है कि ये परस्पर विरोध को प्राप्त न होकर निरन्तर बढ़ रहे हैं।

वाच्यपरिवर्तन— यथायथं विभज्य समपक्षपातया भक्त्या असक्तम् आराधयतः अस्य त्रिगणेन गुणानुरागात् इव सख्यम् ईयिवता परस्परं न बाध्यते।

टिप्पणियाँ

असक्तम्— सञ्ज+क्त=सक्त। न+सक्त=असक्त। नञ् तत्पुरुष समास। यह क्रिया विशेषण है। आराधयतः —आ+राध+शतृ=आराधयत्। षष्ठी विभक्ति का एकवचन आराधयतः। यथायथम्—यथास्वम् इस अर्थ में 'यथास्वे यथायथम्' इस नियम से यथा को निपातन से द्वित्व होकर नपुंसकभाव होता है। तदनन्तर 'ह्रस्वो नपुंसके प्रातिपदिकस्य' सूत्र से ह्रस्व होकर 'यथायथम्' रूप बनता है। विभज्य—वि+भज+क्त्वा (ल्यप्)। भक्त्या—भज+क्तिन्=भक्ति। तृतीया विभक्ति का एक वचन=भक्त्या। समपक्षपातया—समः पक्षे पातः यस्याः तया। बहुव्रीहि समास। पत+घञ्= पात। गुणानुरागात्—गुणेषु अनुरागात्। सप्तमी तत्पुरुष समास। अनु+ रञ्ज+घञ्=अनुराग के गुणवाची होने और हेतु होने से 'विभाषा गुणेऽस्त्रियाम्' सूत्र से पञ्चमी विभक्ति हुई। सख्यम्—सख्युर्भाव' अर्थ में सख्युर्य' सूत्र से य प्रत्यय होकर सखि+य=सख्य। ईयिवता—इण धातु से लिट् लकार में क्वसु प्रत्यय होकर निपातन से ईयिवान् रूप बना। त्रिगण—

त्रयाणां गणः। धर्म, अर्थ और काम इन तीन पुरुषार्थों को त्रिगण कहा जाता है। सांसारिक सफलता को पाने के लिये इन तीनों को प्राप्त करना आवश्यक समझा जाता है। परस्परम्—परम परम इस स्थिति में पहले परम् के म को स् होता है। स को रु और विसर्ग होकर पर परन रूप बनता है। अब 'कस्कादिषु च' सूत्र से विसर्ग को स होकर परस्परम रूप बनता है।

अलङ्कार––उत्प्रेक्षा और काव्यलिङ्ग।

धर्म, अर्थ और काम के परस्पर बाधित न होने के लिये गुणों के प्रति अनुराग होने से इस हेतु की सम्भावना किये जाने से उत्प्रेक्षा अलंकार है।

'समपक्षपातया भक्त्या यथायथं विभज्य' इन पदों के अर्थों को धर्म, अर्थ और काम इन तीनों की वृद्धि के हेतु के रूप कथन किया जाने से काव्यलिङ्ग अलंकार है।

विशेष कथन- धर्म अर्थ और काम ये तीनों पुरुषार्थ कल्याण करने वाले हैं। इन तीनों का यथायोग्य रूप से सेवन करने से ही कल्याण हो सकता है। जो केवल एक का सेवन करता है, वह हीन होता है और सांसारिक उन्नति को प्राप्त नहीं कर सकता। तीनों पुरुषार्थों के बीच संतुलन को बनाये रखने से ही मनुष्य उन्नति कर सकता है।

घण्टापथ टीका—असक्तमिति। यथायथं यथास्वं विभज्य, असङ्कीर्णरूपं विविच्येत्यर्थः। 'यथास्वे यथायथम्' इति निपातनात् द्विर्भावो नपुंसकत्वं च। 'ह्रस्वो नपुंसके प्रातिपदिकस्य' इति ह्रस्वत्वम्। पक्षे पातः पक्षपातः आसक्तिविशेषः समस्तुल्यो यस्यां तया समपक्षपातया। भक्त्याऽनुरागविशेषेण। पूज्येष्वनुरागो भक्तिरित्युपदेशः। पूज्यश्चायं त्रिवर्ग इति। असक्तमनासक्तम्। अव्यसनितयेति यावत्। अपरावयस्सेवमानस्यास्य दुर्योधनस्य त्रयाणां धर्मार्थकामानां गणः स्त्रिगणः त्रिवर्गः। त्रिवर्गो धर्मकामार्थैश्चतुर्वर्गः 'समोक्षकैः' इत्यमरः गुणानुरागात्तदीयगुणेष्वनुरागात्। गुणवदाश्रयलोभादित्यर्थः। सख्यं मैत्री 'सख्युर्य' इति य प्रत्ययः। ईयिवानुपगतवानिवेत्युत्प्रेक्षा। 'उपेयिवाननाश्वाननूचानश्च' इति क्वसुप्रत्ययान्तो निपातः। 'नानोपसर्गस्त्वम्' इति काशिकाकार आह स्म। परस्परं न बाधते। समवर्तित्वादस्य

धर्मार्थकामा परस्परानुपमर्देन वर्धन्त इत्यर्थः । उक्तं च—'धर्मार्थकामाः सममेव सेव्या यो ह्येकसक्तः स जनो जघन्यः' इति ॥११॥

प्रकरण—दुर्योधन की राजनीति का उल्लेख करते हुए किरात ने बताया कि किस प्रकार उसने सेवक आदियों को अपना अनुरक्त बना लिया है और वह धर्म, अर्थ और काम इन तीनों पुरुषार्थों को बढ़ा रहा है। अब वह बताता है कि दुर्योधन साम, दान, दण्ड, भेद इन चारों उपायों का कुशलता से प्रयोग कर रहा है। पहले वह साम और दान का वर्णन करता है—

निरत्ययं साम न दानवर्जितं
न भूरि दानं विरहय्य सत्क्रियाम् ।
प्रवर्तते तस्य विशेषशालिनी
गुणानुरोधेन विना न सत्क्रिया ॥१२॥

अन्वय—तस्य निरत्ययम् साम दानवर्जितम् न । भूरिदानम् सत्क्रियाम् विरहय्य न । विशेषशालिनी सत्क्रिया गुणानुरोधेन विना न प्रवर्तते ।

संस्कृत व्याख्या—तस्य दुर्योधनस्य 'निरत्ययं' निर्बाधं कपटरहितम् इत्यर्थः 'साम' सान्त्व सामनाम्न उपायस्य प्रयोगः 'दानवर्जितं' दानेन वर्जितं रहितं न वर्तते । सामप्रयोगेण सह दुर्योधनः दानेन अपि जनान् वशीकरोति । तस्य 'भूरिदानं' भूरि प्रचुरं दानं उपायनानां प्रदानं 'सत्क्रियां' समादरं 'विरहय्य' परित्यज्य न वर्तते । यस्मै स दानं ददाति तस्मै अनादरपूर्वकं न ददाति अपितु सत्कृत्य ददाति । अनादरपूर्वकं दत्तं दानं विफलं भवति । तस्य 'विशेषशालिनी' विशेषेण अतिशयेन शालते शोभते इति तथाभूता 'सत्क्रिया' समादरः गुणानुरोधेन ग्रहणेन गुणानां शौर्यादीनां अनुरोधेन विना न प्रवर्तते । गुणवद्भ्य एव स दानं ददाति इति भावः ।

हिन्दी अर्थ—उस दुर्योधन का कपट से रहित साम का प्रयोग दान से रहित नहीं होता । उसका प्रचुर दान सत्कार के बिना नहीं होता । विशेष रूप से शोभित होने वाला उसका सत्कार गुणों के बिना प्रवर्तित नहीं होता ।

भाव—दुर्योधन जिस किसी से सान्त्व वचनो को, मधुर वाणी से कहता है, वह निष्कपट रूप से कहता है और साथ मे उपहार भी देता है। वह उपहारो को प्रचुर मात्रा मे देता है और जिसको उपहार देता है, उसका सत्कार करके देता है वह उन्ही व्यक्तियो का सत्कार करता है जो विशेष गुणो से युक्त होते है।

वाच्यपरिवर्तन—तस्य निरत्ययेन साम्ना दानर्वजितेन न (भूयते)। भूरि दानेन सत्क्रिया विरहय्य न (भूयते)। विशेषशालिन्या सत्क्रियया गुणानुरोधिना न प्रवत्यते।

टिप्पणियाँ

निरत्ययम्—अत्ययस्य अभाव। अव्ययीभाव समास। अति + इ + अच = अत्यय। **दानवर्जितम**—दानेन वर्जितम। तृतीया तत्पुरुष समास। दा + ल्युट (अन) = दान वृज + क्त—वर्जित। **विरहय्य**—वि + रह + णिच + क्त्वा (ल्यप)। **सत्क्रिया**—सत + कृ + श + रिङ + इयङ + टाप् = सत्क्रिया। **विशेषशालिनी**—विशेषेण शालितु शील यस्य सा अर्थ मे विशेष + शाल् + णिनि + ङीप = विशेषशालिनी। **गुणानुरोधेन**—गुणानुरोधेन। षष्ठी तत्पुरुष समास। अनु + रुध + घञ = अनुरोध। तृतीया विभक्ति का एक वचन = अनुरोधेन। अनुरोधेन विना, यहा पृथग्विनानानाभिस्तृतीयाऽन्यतरस्याम् सूत्र से विना के योग मे तृतीया विभक्ति हुई।

अलङ्कार—एकावली और विनोक्ति।

उत्तर उत्तर वस्तु पूर्व पूर्व वस्तु के विशेषण के रूप मे कहने से यहाँ एकावली अलङ्कार है। दानवर्जित को साम के सत्क्रिया को दान के, और गुणानुरोध को सत्क्रिया के विशेषण के रूप म कहा गया है।

विनोक्ति अलङ्कार का लक्षण—

विनोक्ति सा विनाऽन्येन यत्रान्य सन्न नेतर।

जहा एक के बिना दूसरा शोभित नही होता, वहाँ विनोक्ति अलकार होता है। यहाँ दान के बिना साम की, सत्क्रिया के बिना दान की अनेक गुणा के बिना सत्कार की शोभा नही होती, इसको व्यक्त किया जाने के कारण विनोक्ति अलकार है।

छन्द—वंशस्थ ।

विशेष कथन—इस पद्य के द्वारा व्यक्त किया गया है कि यदि किसी से मधुर बात की जावे तो उसको प्रचुर मात्रा में उपहार भी देने चाहियें, उपहारों को आदर के साथ देना चाहिये । आदर उसी का करना चाहिये जो विशिष्ट गुणों से युक्त हो ।

घण्टापथ टीका—निरत्ययमिति । तस्य दुर्योधनस्य निरत्ययं निरवधिम । अमायिकमित्यर्थः । अ यथा जनानां दुग्र हत्वादिति भाव । साम सान्त्वम 'साम सान्त्वमुभे समे' इत्यमरः । दानवर्जितेन प्रवर्त्तते । अन्यथालुब्धाद्यात्रजनस्य शुष्कप्रियवचस्यदुष्करत्वादिति भाव । उक्त च—'लुब्धमर्थेन गृह्णीयात्स्तब्धम ञ्जलिकर्मणा । मूर्खं छन्दानुरोधेन तत्त्वार्थेन च पण्डितम' इति । तथा भूरि प्रभूत न तु कदाचित्स्वल्पमित्यर्थः । दानं धनत्यागः । सदित्यादरार्थेऽव्ययम । आदरानादरयोः सदसती' इति निपातसञ्ज्ञास्मरणात । तस्य क्रिया सत्क्रिया निरहय्य विहाय । ल्यपि लघुपूर्वात' इत्ययादेश । न प्रवर्त्तते । अनादरे दानव फल्यादिति भाव । न चैव सर्वत्र, येनाविवेकित्व कोशहानिश्च स्यादित्याह—प्रेति । विशेषशालि यतिशययोगिनी सत्क्रियाऽऽदरक्रिया गुणानुरोधेन गुणानुरागेण विना न प्रवर्त्तते । पृथग्विना'—इत्यादिना तृतीया । गुणेष्वेवादरो भूरि दान चेति नोक्तदोषावकाश इत्यर्थ । अत्रोत्तरोत्तरस्य पूर्वपूर्वविशेषणतया स्थापनादेकावल्यलंकार । तदुक्त काव्यप्रकाशे—स्थाप्यतेऽपोह्यते वाऽपि यथापूर्व परं परम । विशेषणतया वस्तु यत्र सैकावली द्विधा' इति ॥१२॥

प्रकरण—दुर्योधन द्वारा प्रयुक्त किये जाने वाले नीति के प्रयोगों का वर्णन करते हुए वनेचर साम और दाम का प्रयोग बता कर अब दण्ड के प्रयोग बताता है—

वसूनि वाञ्छन्न वशी न मन्युना
स्वधर्म इत्येव निवृत्तकारणः
गुरूपदिष्टेन रिपौ सुतेऽपि वा
निहन्ति दण्डेन स धर्मविप्लवम् ॥१३॥

अन्वय—वशी स न वसूनि वाञ्छन् न मन्युना स्वधर्मः इति एव निवृत्तकारणः रिपौ सुते अपि वा गुरूपदिष्टेन दण्डेन धर्मविप्लवम् निहन्ति ।

संस्कृत व्याख्या—'वशी' जितेन्द्रियः कामक्रोधादिरहित इति भावः स दुर्योधन न वसूनि' धनानि 'वाञ्छन्' अभिलषन् न 'मन्युना' क्रोधेन अपितु 'स्वधर्म 'स्वकीय राजकीय कर्तव्यम 'इति एव' अस्माद् एव' हेतो निवृत्तकारण' निवृत्तानि अपगतानि कारणानि क्रोधादीनि दण्डनिमित्तानि यस्य तथाभूत 'रिपौ' शत्रौ वा अथवा 'सुते' पुत्रे अपि गुरूपदिष्टेन' गुरुभि द्रोणादिभि आचार्यैः मन्वादिभि शास्त्रकारैः वा मन्वादीनां शास्त्रकाराणां पद्धत्या परिचितै न्यायाधीशैः वा उपदिष्टेन कथितेन 'दण्डेन' न्यायदण्डेन 'धर्मविप्लव' धर्मस्य सदाचारस्य विप्लवं व्यतिक्रमं 'निहन्ति' निवारयति ।

हिन्दी अर्थ—इन्द्रियों को वश में करने वाला वह दुर्योधन न तो धनों की अभिलाषा से और न क्रोध के कारण अपितु मेरा यह राजकीय कर्तव्य है इस कारण क्रोध आदि के निमित्तों को छोड़ कर, चाहे शत्रु हो या पुत्र हो, सबको आचार्यों या मनु आदि शास्त्रों को जानने वाले न्यायाधीशों द्वारा बताये गये दण्ड के विधान से धर्म का उल्लंघन करने से रोकता है ।

भाव—उस दुर्योधन ने अपनी इन्द्रियों को वश में कर रखा है । वह धर्म में बताये गए दण्ड के विधान से धर्म का पालन कराता है । धर्म के मार्ग का उल्लंघन नहीं होने देता है । दण्डविधान में वह न तो धन की इच्छा से और न क्रोध से किसी को दण्ड देता है । दण्ड देते हुये वह' यह मेरा शत्रु है वह मेरा पुत्र है इसका भी विचार नहीं करता ।

वाच्यपरिवर्तन – वशिना तेन न वसूनि वाञ्छता न मन्युना स्वधर्म इति एव निवृत्तकारणेन रिपौ सुते अपि वा गुरूपदिष्टेन दण्डेन धर्मविप्लवः निहन्यते ।

टिप्पणियाँ

वसूनि – वस + उ = वसु । प्रथमा विभक्ति का बहुवचन = वसूनि । वाञ्छन्—वाञ्छ + शतृ = वाञ्छत् । प्रथमा विभक्ति का एकवचन = वाञ्छन् ।

वशी—वशो यस्य स ति अथ म वश+इनि=वशिन । प्रथमा विभक्ति का एक वचन=वशी । **मन्युना**—मनु+युच=म यु । तृतीया विभक्ति का एकवचन म युना । **गुरूपदिष्टेन**—गुरुभि उपदिष्टेन । तृतीया तत्पुरुष । गु+कु=गुरु । उप+दिश+क्त=उपदिष्ट । **निवत्तकारण**—निवृत्तानि कारणानि यस्य स । बहुव्रीहि समास । नि+वृत+क्त=निवत्त । कृ+णिच+ल्युट (अन)=कारण । निहन्ति—नि+हन धातु का लट लकार प्रथम पुरुष एकवचन । दण्डन—दण्डयति अथ म दण्ड+अच=दण्ड । तृतीया विभक्ति का एकवचन—दण्डेन । **धमविप्लवम**—धमस्य विप्लवम । षष्ठी तत्पुरुष समास । धायते जनेन अथ म ध+म=धम । वि+प्लु+अप=विप्लव ।

अलङ्कार—परिसख्या । परिसख्या अलकार का लक्षण—

परिसख्या निषिध्यैकमेकस्मिन वस्तुन यन्त्रणम ।

एक वस्तु का नियत्रण करक उसे अय मे स्थापित करने मे परिसख्या अलकार होता है । इस पद्य मे दण्ड देन के हेतु को धन का चाहना और मन्यु मे निषेध करके धम मे स्थापित करन स **परिसख्या** अलकार है ।

छ द—वशस्थ ।

विशेष कथन—राज्य का शासन करन के लिये और प्रजा के धम का पालन कराने के लिये राजा को दण्ड का आश्रय लेना ही होता है । परन्तु दण्ड देते समय राजा का लोभ, क्रोध आदि विचारो स रहित होना चाहिये । चाहे स्नेही जन हो, चाहे शत्रुता रखन वाले, दण्ड के विधान मे पक्षपात से रहित होना चाहिये । दण्ड ही प्रजा का पालन करन वाला और धम का पालन करने वाला होता है । मनु का कथन है—

दण्ड शास्ति प्रजा सर्वा दण्ड एवाभिरक्षति ।
दण्ड सुप्तेषु जागर्ति दण्ड धम विदुबु धा ।

घण्टापथ टीका—वसूनीति । वशी स दुर्योधनो वसूनि धनानि वाञ्छन । लोभा नेत्यथ । 'वसु तोये धने मणौ' इति वजयन्ती । निह तीति शेष । तथा मन्युना कोपेन न च । 'मन्युर्दैन्ये क्रतौ क्रुधि' इत्यमर । धमशास्त्रानु सारेण क्रोधलोभविवर्जित इति स्मरणादित्यथ । किन्तु निवत्तकारणो निवृत्त

लोभादिनिमित्त स स्वधम त्येव । स्वस्य राज्ञ सतो ममाय धर्मो ममेद कर्त्तव्यमित्यस्मभादेव हेतोरित्यथ । 'अदण्डया दण्डयन् राजा दण्डयाश्चवाप्य दण्डयन । अयशो महदाप्नोति नरक चव गच्छति' ।। इति स्मरणादिति भाव । गुरूपदिष्टेन प्राडविवाकोपदिष्टेन। धमशास्त्र पुरस्कृत्य प्राडविवाक मते स्थित । समाहितमति पश्य द व्यवहारानुक्रमात' ।। इति नारदस्मरणात दण्डेन नमेन । शिक्षयत्यर्थ । रिपौ सुतेऽपि वा । स्थितमिति शेष । एतेनास्य समदर्शित्वमुक्तम् धमविप्लवम धमव्यतिक्रमम । अधममिति यावत । निहन्ति निवारयति । दुष्ट एवास्य शत्रु शिष्ट एव ब धुन तु सम्ब धिब धन पक्षपातोऽस्तीत्यथ ।।१३।।

प्रकरण— दुर्योधन की नीतियों का वर्णन करते हुए किरात उसके द्वारा आयोजित साम, दाम, और दण्ड को बता कर भद के प्रयोग के विषय में बताता है—

विधाय रक्षान्परित परेतरान
अशङ्किताकारमुपैति शङ्कित ।
क्रियाऽपवर्गेष्वनुजीविसात्कृता
कृतज्ञतामस्य वदन्ति सम्पद ।।१४।।

अन्वय—शङ्कित परित परेतरान् रक्षान विधाय अशङ्किताकारम उपैति क्रियापवर्गेषु अनुजीविसात्कृता सम्पद अस्य कृतज्ञताम् वदन्ति ।

संस्कृत व्याख्या— शङ्कित ' शका सन्देह स जाता यस्य स शङ्कित स्वीया परे वा मम अनिष्ट न कुयु इति स देह कुवन् स दुर्योधन 'परित' सवत स्वराष्ट्रेषु परराष्ट्रेषु च 'परेतरान' परेभ्य शत्रुभ्य इतरान् अ यान् आत्मीयान् इत्यथ अथवा परान् शत्रून् इतरयन्ति भिन्ना आत्मन पक्षे कुवन्ति इति तथाभूतान् रक्षान' रक्षकान् गुप्तचरान् इति भाव 'विधाय' नियुज्य 'अशङ्किताकारम' अशङ्कित सन्देहरहित आकार यस्य तथाभावम् उपैति प्राप्नोति । अविश्वास कुवन्नपि स चारान विश्वस्तमिव दशयते

स्वपरराष्ट्राणां च भेदं गृह्णाति । 'क्रियापवर्गेषु क्रियाणां कार्याणां अपवर्गेषु सफलसमाप्तिषु 'अनुजीविसात्कृता' सेवकेभ्य उपहारीकृता 'सम्पद' समृद्धय अस्य दुर्योधनस्य कृतज्ञता' कृतज्ञ न गुणाग हित्व वा 'वदति' सूचयति । सफलकार्येषु सेवकेषु स प्रभूत धन वितीर्य कृतज्ञ । ज्ञापयति इति भाव ।

हिन्दी अर्थ—शङ्कित रहते हुये उस दुर्योधन ने चारों ओर आत्मीय तथा शत्रुओं को फोड़ने में दक्ष गुप्तचरों को नियुक्त कर रखा है । इस प्रकार वह अपने आपको शङ्का से रहित आकार वाला दिखाता है । दिये हुये कार्य को पूरा कर लेने पर सेवकों को उपहार के रूप में दी गई सम्पत्तियां उसकी कृतज्ञता के गुण को व्यक्त करती हैं ।

भाव – दुर्योधन को सदा यह शंका बनी रहती है कि उसके अपने राज्य में या दूसरे राज्यों में उसके विरुद्ध षड्यन्त्र न हो रहे हों । इसलिये उसने अपने विश्वास के एवं दूसरों को फोड़ने में कुशल गुप्तचरों को स्थान स्थान पर नियुक्त कर रखा है । यद्यपि वह किसी पर विश्वास नहीं करता, तथापि वह उन सेवकों को यही दिखाता है कि वह उन पर विश्वास कर रहा है । कार्यों के सफलता से पूरा हो जाने पर वह सेवकों के प्रति कृतज्ञता प्रकट करता है और उनको प्रभूत धन उपहार के रूप से देता है ।

वाच्यपरिवर्तन शङ्कितेन परित परेतरान् रक्षान् विधाय अशङ्किताकार उपेयते । क्रियापवर्गेषु अनुजीविसात्कृतैः सम्पद्भिः यस्य कृतज्ञता व्यज्यते ।

टिप्पणियाँ

विधाय — वि + धा + क्त्वा (ल्यप्)। रक्षान्—रक्ष + अच = रक्ष । द्वितीया विभक्ति के बहुवचन में = रक्षान । परित –परि + तस । चारों ओर । परेतरान् परेभ्य इतरान । पञ्चमी तत्पुरुष समास । अथवा परान् ईरयति इति तान । उपपद समास । अशङ्किताकारम्—अशंकित आकार यस्य तादृशम । बहुव्रीहि समास । शङ्का अस्य सञ्जाता इस अर्थ में शङ्का + इतच = शङ्कित । न + शङ्कित अशङ्कित । तत्पुरुष समास । आ + कृ + घञ् = आकार । उपैति—उप + इ धातु से लट लकार प्रथम पुरुष का एक वचन । क्रियापवर्गेषु— क्रियाणाम् अपवर्गेषु । षष्ठी तत्पुरुष समास । अप + वृज + घञ् = अपवर्ग यहाँ एक

क्रिया की समाप्ति दूसरी क्रिया का उपलक्षण है। इसलिये यहा 'तस्य च भावेन भावलक्षणम' सूत्र से सप्तमी विभक्ति हुई। अनुजीविसात्कृता—अनुजीवितु शील यषा त अथ मे णिनि प्रत्यय होकर अनु+जीव+णिनि=अनुजीविन। अनुजीविन+सात=अनुजीविसात। कृ+क्त=कृत। कृतज्ञताम=कृत जानाति अथ मे कृत+ज्ञा+क=कृतज्ञ। कृतज्ञस्य भाव अथ मे कृतज्ञ+तल+टाप—कृतज्ञता।

अलकार—यमक। यमक अलकार का लक्षण—

अर्थे सत्यथभिन्नाना वर्णाना सा पुन श्रुति। यमकम।

यदि अथ है तो भिन्न अथ वाले वर्णों की उसी क्रम से आवृत्ति होने पर यमक अलकार होता है। यहा 'अशकिताकारमुपैति शकित' म शकित इस वर्णसमूह की उसी क्रम स आवृत्ति होने के कारण यमक अलकार है। यहाँ अशकित का शङ्कित अथरहित और दूसरा शकित साथक है।

छन्द—वशस्थ।

विशेष कथन—राजा को सदा सावधान रहना चाहिये कि कही शत्रु अथवा उसके अपने ही व्यक्ति उसके विरुद्ध षडय त्र न कर रहे हो। उसको अपने राष्ट्र मे और दूसरे राष्ट्रो मे ऐसे दूत नियुक्त करने चाहिये, जो उसके अपने विश्वासपात्र हो और शत्रुओ को फोड लेने म कुशल हो। इसके साथ ही राजा को चाहिये कि सेवक जब कार्यों को सफलता के साथ पूरा कर ले तो उनको प्रचुर पारितोषिक दे। इससे वे सदा राजा के प्रति अनुरक्त बने रहेंगे।

घण्टापथ टीका—विधायेति। शङ्का सञ्जातास्य शङ्कितोऽविश्वस्त सन परित सवत्र स्वपरमण्डले परेतरानात्मीयान। अवञ्चकानिति यावत्। यद्वा परानितरयन्ति भेदे।त्मसात्कुर्वन्ति परेतरान। तत्करोति ण्य तात्कमण्यण्प्र यण। रक्ष तीति रक्षान् रक्षकान। म त्रगुप्तिसमर्थान त्यथ। 'नन्दिग्रहि'—इत्यादिना पचाद्यच। विधाय कृत्वा। नियुज्येत्यथ। अशङ्किताकारमुपैति। स्वयमविश्वस्तोऽपि विश्वस्तवदेव व्यवहर परमुखेनव परान भिनत्ति इत्यथ। न च तान् रक्षान् स उपेक्षते येन तेऽपि विकुर्वीरन्नित्याह—क्रियेति। नियाऽपवगषु

कमसमाप्तिष्वनुजीविसात्कृता भत्याधीना कृता । अपरावर्त्तितया दत्ता इत्यर्थ । देये त्रा च' इति मातिप्रत्यय । सम्पदोऽस्य राज्ञ कृतज्ञता-मुपकारित्व वदति । प्रीतिदानरेवास्य कृतज्ञत्व प्रकाश्यते, न तु वाङमा-त्रेणेत्यर्थ । कृतज्ञ राज्ञ यनुजीविनोऽनुरज्य तेऽनुरक्ताश्च त रक्षन्ति इति भाव ॥१४॥

प्रकरण—कुरुदेश का वृत्तान्त बतलाते हुये वनेचर ने कहा कि दुर्योधन ने साम, दान, दण्ड और भेद इन चार उपायो का सफलता के साथ प्रयोग किया है । अब यह बताना है कि इन उपायो से उसको क्या फल प्राप्त हुआ है—

अनारत तेन पदेषु लम्भिता,
विभज्य सम्यग्विनियोगसत्क्रिया ।
फलन्त्युपाया परिबृहितायती-
रुपेत्य सघर्षमिवार्थसम्पद ॥१५॥

अन्वय—तेन सम्यक पदेषु विभज्य विनियोगसत्क्रिया लम्भिता उपाया सघर्षम् इव उपेत्य परिबृहितायती अर्थसम्पद अनारतम फलन्ति ।

संस्कृत व्याख्या—तेन दुर्योधनेन 'सम्यक' यथोचितरूपेण पदेषु' विभिन्न कार्येषु 'विभज्य' विभाग कृत्वा, यस्मिन् कर्मणि यस्मिन् काले च य उपाय उचित तस्य तत्र प्रयोग कृत्वा, 'विनियोगसत्क्रिया' विनियोग उपायाना यथोचित प्रयोग एव सत्क्रिया सत्कार इति तथाभूता एव लम्भिता' प्रापिता 'उपाया' सामदानदण्डभेदा चत्वार उपाया 'सघर्षम' इव परस्परस्पर्धामि इव 'उपेत्य प्राप्य परिबृहितायती परिबृहिता निरन्तर वर्धयन्ती आयति उत्तरकाल यासा ता निरन्तर वर्धमान इति भाव अर्थसम्पद' अर्थाना धनाना सम्पद समृद्धय 'अनारत' निरन्तर' फलन्ति फलानि' प्रसुवन्ति प्रापयन्ति इत्यर्थ ।

हिन्दी अनुवाद—उस दुर्योधन द्वारा यथोचित रूप से विभाग करके प्रयोग के द्वारा ही सत्कृत किये गये, इस प्रकार प्राप्त कराये गये चारो उपाय साम,

दान, दण्ड और भेद मानो परस्पर सघर्ष को प्राप्त करके अर्थात एक दूसरे से होड करते हुये निरन्तर बढती हुई धन सम्पत्तियो को फलित करते हैं।

भाव—दुर्योधन ने चारो उपायो का ठीक ठीक प्रयोग किया है। इसलिये वे चारो उपाय उसकी धन सम्पत्तियो को निरन्तर बढा रहे है।

वाच्यपरिवर्तन—तेन सम्यक पदेषु विभज्य विनियोगसत्क्रियैः लम्भितैः उपायैः सघर्षम् इव उपेत्य परिबृहितायत्यः अर्थसम्पदः अनारत फलन्ते।

टिप्पणियाँ

अनारतम—न+आ+रम+क्त। सतत रूप से। लम्भिता—लभ+णिच+क्त=लम्भित। प्रथमा विभक्ति का बहुवचन=लम्भिता। विभज्य—वि+भज+क्त्वा (ल्यप)। सम्यक—सम—अञ्च+क्विप। विनियोगसत्क्रिया—विनियोग एव सत्क्रिया येषा ते। बहुव्रीहि समास। वि+नि+युज+घञ=विनियोग। उपाय—उप+अय+घञ्—उपाय प्रथमा विभक्ति का बहुवचन उपाया। परिबृहितायती—परिबृहिता आयति यासा ता। बहुव्रीहि समास। परि+बृह+णिच+क्त=परिबृहिता। आ+यम+क्तिन=आयति। उपेत्य—उप+इण+क्त्वा (ल्यप्)। सघर्षम—सम+घर्ष+घञ=सघर्ष। अर्थसम्पद—अर्थाना सम्पद षष्ठी तत्पुरुष समास। सम+पद्+क्विप=सम्पद।

अलकार—अन्योन्य और उत्प्रेक्षा। अन्योन्य अलकार का लक्षण—

अन्योन्य नाम यत्र स्यादुपकार परस्परम।

जहा परस्पर एक दूसरे का उपकार किया जावे, वहा अन्योन्य अलकार होता है। प्रस्तुत श्लोक मे दुर्योधन उपायो का सत्कार करता है और उपाय इसको प्रभूत सम्पत्ति प्रदान करते हैं, इस प्रकार एक दूसरे का उपकार होने से यहाँ अन्योन्य अलकार है।

उपायो मे परस्पर सघर्ष की सम्भावना करने से उत्प्रेक्षा अलकार भी है।

छन्द—वशस्थ।

विशेष कथन—साम, दान, दण्ड और भेद इन चारो उपायो का यथायोग्य प्रयोग करने से राज्य मे समृद्धि होती है।

घण्टापथ टीका—अनारतमिति । तेन राज्ञा पदगपादेयवस्तुषु । 'पद व्यवसितत्राणस्थानलक्ष्मान्ध्रिवस्तुषु' इत्यमर । सम्यगसङ्कीर्णमव्यस्तं च विभज्य विविच्य । विनियोग एव सत्क्रियाऽनुग्रह सत्कार इति यावत । येषा ते तथोक्ता । स्थानेषु सम्यक्प्रयुक्ता इत्यर्थ । उपाया सामादय । सधर्म परस्परस्पर्धामुपेत्यवेत्युत्प्रेक्षा । परिवृढिता यत्नी प्रचितास्तरकाला । स्थिरा इत्यर्थ । अर्थसम्पदोऽनारतमजस्रं फलति प्रसुवत इत्यर्थ ॥१५॥

प्रकरण—किरात ने युधिष्ठिर को बताया कि दुर्योधन ने साम आदि चारों उपायों का प्रयोग करके अपनी धन-सम्पत्ति को खूब बढ़ा लिया है। उसकी सम्पत्ति इस प्रकार है -

अनेकराजन्यरथाश्वसकुल तदीयमास्थाननिकेतनाजिरम् ।
नयत्ययुग्मच्छदगन्धिरार्द्रता भृश नृपोपायनदन्तिना मद ॥१६॥

अन्वय—अयुग्मच्छदगन्धि नृपोपायनदन्तिना मद अनेकराजन्यरथाश्वसकुलम् तदीयम् आस्थाननिकेतनाजिरम् भृशम् आर्द्रताम् नयति ।

संस्कृत व्याख्या—'अयुग्मच्छदगन्धि' अयुग्मच्छदाना सप्तपर्णपुष्पाणा गन्ध इव गन्ध यस्य त दृश 'नृपोपायनदन्तिना' नृपाणा करदभूताना भूपतीनाम् उपायनानाम उपहारेण प्रदत्ताना दन्तिना गजाना 'मद' दानजलम 'अनेकराजन्यरथाश्वसकुलम' अनेकेषा बहूना राजन्याना क्षत्रियाणा रथ स्यन्दन अश्वै हयै च सकुलम् सकीर्ण तदीय' तस्य दुर्योधनस्य 'आस्थाननिकेतनाजिरम' आस्थाननिकेतनस्य सभामण्डपस्य अजिर प्रागण 'भृशम' अत्यधिकम् 'आर्द्रता' पकिलता नयति 'प्रापयति'। अनेक राजान दुर्योधनाय मदगन्धिन हस्त्यादीन बहुमूल्यान् उपहारान प्रस्तुवन्ति इति भाव ।

हिन्दी अर्थ—सप्तपर्ण के फूलों की सी गन्ध वाला राजाओं द्वारा उपहार में दिये गये हाथियों का मदजल अनेक क्षत्रियों के रथों और घोड़ों से भरे हुये उस राजा दुर्योधन की राजसभा के प्रागण को गीला कर रहा है।

भाव दुर्योधन के साम आदि उपायों से वशीभूत होकर अनेक राजा

उसके लिये हाथी आदि बहुमूल्य उपहारों को देकर उसकी राजसभा में उपस्थित रहते हैं।

वाच्यपरिवर्तन—अयुग्मच्छदगन्धिना नृपोपायनदन्तिनां मदेन अनेकराजन्य रथाश्वसंकुलं तदीयम् आस्थाननिकेतनाजिरं भृशम् आर्द्रता नीयते।

टिप्पणियाँ

अनेकराजन्यरथाश्वसंकुलम्—अनेकेषां राजन्यानां रथाश्वेन संकुलम्। षष्ठी और तृतीया तत्पुरुष समास। रथाश्च अश्वाश्च रथाश्वम्। द्वन्द्व समास। 'द्वन्द्वश्च प्राणितूर्यसेनाङ्गानाम्' सूत्र से यहाँ एकवचन होता है। राज अपत्यम् अर्थ में राजन् शब्द से 'राजश्वशुराद्यत्' सूत्र से यत् प्रत्यय होकर राजन्+यत्=राजन्य। अश+क्वन्=अश्व। रम+क्थन=रथ। सम+कुल+क=संकुल। **तदीयम्**—तस्य इदम् अर्थ में तद्+छ (ईय)—तदीय। **आस्थाननिकेतनाजिरम्**—आस्थानस्य निकेतनस्य अजिरम् षष्ठी तत्पुरुष समास। आ+स्था+ल्युट् (अन)—आस्थान। नि+कित+ल्युट् (अन)=निकेतन। अज+किरन्=अजिर। **अयुग्मच्छदगन्धिः**—अयुग्मच्छदस्य गन्ध इव गन्धः यस्य सः। उत्तरपदलोपी बहुव्रीहि समास। 'उपमानाच्च' सूत्र से अन्त में गन्ध के अ को इ हुआ। **आर्द्रताम्**—आर्द्रस्य भावः अर्थ में आर्द्र+तल्+टाप्=आर्द्रता। **भृशम्**—भृश+क। **नृपोपायनदन्तिनाम्**—नृपाणाम् उपायनानां दन्तिनाम् षष्ठी तत्पुरुष समास। उप+अय+ल्युट् (अन)=उपायन। प्रशस्तौ दन्तौ यस्य अर्थ में इनि प्रत्यय होकर दन्त+इनि=दन्तिन। **मदः**—मदयति हर्षयति अर्थ में मद+अप=मद।

अलङ्कार—उदात्त और उपमा। उदात्त अलंकार का लक्षण—

उदात्तं वस्तुनः सम्पत्।

जहां किसी की लोक से अतिशयित समृद्धि का वर्णन किया जाये, वहां उदात्त अलंकार होता है। यहां दुर्योधन की लोक से अतिशयित समृद्धि का वर्णन करने से उदात्त अलंकार है।

अयुग्मच्छदगन्धिः में उपमा अलंकार है। इसमें अयुग्मच्छद उपमान, मद उपमेय, समान गन्ध का होना साधारण धर्म है। यहां उपमा वाचक शब्द का लोप हो जाने से वाचकलुप्ता है।

छन्द—वंशस्थ।

विशेष कथन—महाकवि ने हाथियों को निमित्त बनाकर दुर्योधन की समृद्धि का वर्णन किया है। अनेक राजाओं ने दुर्योधन की आधीनता स्वीकार कर ली है। वे उसको अमूल्य उपहार देते रहते हैं। समय पड़ने पर वे दुर्योधन की निश्चय ही सहायता करेंगे।

घण्टापथ टीका—अनेकेति। अयुग्मच्छदस्य सप्तपर्णपुष्पस्य गन्ध इव गन्धो यस्यासावयुग्मच्छदगन्धिः। 'सप्तम्युपमान'—इत्यादिना बहुव्रीहिरुत्तरपदलोपश्च। 'उपमानाच्च' इति समासान्त इकारः। नृपाणामुपायनानि उपहारभूता ये दन्तिनस्तैर्मदः। 'उपायनमुपग्राह्यमुपहारस्तथोपदा' इत्यमरः। राज्ञामपत्यानि पुमांसो राजन्याः क्षत्रियाः। 'राजश्वसुराद्यत्' इति यत् प्रत्ययः। राज्ञोऽपत्ये जातिग्रहणात् अन्। रथाश्चाश्वाश्च रथाश्वम्। सेनाङ्गत्वादेकवद्भावः। अनेकेषां राजन्यानां रथाश्वेन सकुलं व्याप्तं तदीयमास्थाननिकेतनाजिरं सभामण्डपाङ्गणं भृशमत्यर्थमार्द्रतां पङ्किलत्वं नयति। एतेन महासमृद्धिरस्योक्ता। अत एवोदात्तालंकारः। तथा चालंकारसूत्रम्—'समृद्धिमद्वस्तुवर्णनमुदात्तम्'। इति ॥१६॥

प्रकरण—वनेचर दुर्योधन द्वारा प्रयुक्त नीति के उपायों और उनसे प्राप्त होने वाली समृद्धि का वर्णन कर रहा है। अब वह दुर्योधन द्वारा किये जाने वाले प्रजा-रञ्जन के कार्यों का वर्णन करता है—

सुखेन लभ्या दधतः कृषीवलै-
रकृष्टपच्या इव सस्यसम्पदः।
वितन्वति क्षेममदेवमातृका-
श्चिराय तस्मिन्कुरवश्चकासति ॥१७॥

अन्वय—तस्मिन् चिराय क्षेमम् वितन्वति अदेवमातृकाः कुरवः कृषीवलैः अकृष्टपच्याः इव सुखेन लभ्याः सस्यसम्पदः दधतः चकासति।

सरकृत व्याख्या—तस्मिन् दुर्योधने 'चिराय' दीर्घकालादारभ्य 'क्षेम'

कल्याणं वितन्वति' विस्तारयति सति, स दुर्योधनः सततं प्रजाकल्याणकारीणि कार्याणि करोति, कृषेः विकासाय कुल्याकूपादीनां क्षेत्रसेचनसाधनानां व्यवस्थां करोति इत्यर्थः, 'अदेवमातृकाः' देवः पर्जन्यः माता जननी पालयित्री येषां ते देवमातृकाः, न देवमातृकाः अदेवमातृकाः, केवलं देवे पर्जन्ये एव निर्भराः न सन्तः अपितु कुल्यादीनां व्यवस्थया नदीनामपि जलं क्षेत्रान् सिच्यमानाः 'कुरवः' कुरुजनपदाः 'कृषीवलैः' कृषकैः 'अकृष्टपच्याः' कृष्टेन कर्षणेन पच्याः 'परिणताः' न कृष्टपच्याः विना प्रयासेन परिणताः इत्यर्थः, तादृशाः इव 'सुखेन' अनायासेन 'लभ्याः' प्राप्तुं शक्याः 'सस्यसम्पदः' सस्यानां धान्यानां सम्पदः समृद्धयः 'दधतः' धारयन्तः 'चकासति' शोभन्ते। कृषेः सेचनसाधनानां तादृशः प्रबन्धः यत् क्षेत्राणि केवलं वर्षाम्बुजलनिर्भराणि न अपितु कुल्यादिभिरपि सेच्यमानानि प्रभूतं सस्यम् उत्पादयन्ति इति भावः।

हिन्दी अर्थ—उस दुर्योधन द्वारा चिरकाल से प्रजा हितकारी सिंचाई आदि साधनों के प्रस्तुत करते रहने से केवल वर्षा पर ही निर्भर न रहता हुआ कुरुदेश किसानों द्वारा बिना अधिक प्रयत्न के ही पकने वाली और सरलता से प्राप्त हो सकने वाली धान्यों की समृद्धियों को धारण करता हुआ शोभायमान हो रहा है।

भाव—दुर्योधन ने खेतों को सींचने के लिये सिंचाई के कृत्रिम साधनों—कुओं, नहर, तालाबों आदि का प्रबन्ध किया है। जिससे खेतों में बिना अधिक परिश्रम किये प्रचुर मात्रा में अन्न उत्पन्न होते हैं। इससे उसके राज्य में अकाल पड़ने की सम्भावना नहीं रही है और प्रजा उसके प्रति अधिक अनुरक्त हो रही है।

वाच्यपरिवर्तन—तस्मिन् चिराय क्षेमं वितन्वति अदेवमातृकैः कुरुभिः कृषीवलैः अकृष्टपच्याः इव सुखेन लभ्याः शस्यसम्पदः दधद्भिः चकास्यते।

टिप्पणियाँ

सुखेन—सुख+अच=सुख। तृतीया विभक्ति का एकवचन=सुखेन। लभ्याः—लब्धुं शक्याः अर्थ में लभ+यत्=लभ्य। दधतः—धा+शतृ=दधत। प्रथमा विभक्ति का बहुवचन=दधतः। कृषीवलैः—कृषि+वलच्=कृषीवल। तृतीया विभक्ति का बहुवचन=कृषीवलैः। अकृष्टपच्याः—कृष्टेन

पच्या =कृष्टापच्या । तृतीया तत्पुरुष समास । न कृष्टपच्या =अकृष्टपच्या, नञ तत्पुरुष समास । कृष+क्त =कृष्ट । पच+क्यप =पच्य । सस्यसम्पद — सस्याना सम्पद । षष्ठी तत्पुरुष समास । सस+यत =सस्य । सम+पद्+क्विप =सम्पद् । वित वति—वि+तन्+शतृ=वित वत । सप्तमी विभक्ति का एक वचन =वित वति । क्षेमम—क्षि+मन= क्षेम । अदेवमातृका — देव माता येषा त देवमातृका बहुव्रीहि समास । न देवमातृका =अदेवमातृका । नञ तत्पुरुष समास । चिराय—चिर+गय+अग । अकासति- कास धातु लट लकार प्रथम पुरुष का बहुवचन ।

लकार—उदात्त ।

कुरुदेश की अतिशय कृषि सबधी समृद्धि का वर्णन करन स उदात्त अलकार है ।

छद— वशस्थ ।

विशेष कथन—कृषि भूमि दो प्रकार की होती है । देवमातृक और अदेव मातृक । जहा सिचाई के मनुष्यकृत साधनो—नहर, कुओ, तालाबो आदि का प्रबध नही होता और कृषि केवल वर्षा के जल पर ही निभर रहती है, वह देवमातृक है । जहाँ केवल वर्षा के जल पर ही निभर रह कर नहरो, कुओ, तालाबो आदि को बनवाकर सिचाई के साधन प्रस्तुत किये जाते है, उस भूमि को अदेवमातृक कहते हैं । राजा को चाहिये कि वह सिचाई के साधनो को सदा प्रचुर परिमाण मे प्रस्तुत करवाता रहे । इससे वर्षा न होने पर, भी अकाल पडने की सम्भावना नही रहती । प्रभूत अन्न उत्पन्न होने स प्रजा की समृद्धि बढ़ती है ।

घण्टापथ टीका—सुखेनेति । चिराय तस्मिन दुर्याधने क्षम वित वति क्षेम कुर्वति सति । देव पर्जन्य एव माता येषा ते देवमातृका वृष्ट्यम्बुजीविनो देशा । ते न भवन्तीत्यदेवमातृका नदीमातृका इत्यर्थ । देशो नद्यम्बुवृष्ट्यम्बुसम्पन्नव्रीहिपालित । स्या नदीमातृको देवमातृकश्च यथाक्रमम्' इत्यमर । एतेनास्य कुल्याऽऽदिपूत्तप्रवर्तकत्वमुक्तम । कुरूणा निवासा कुरवो जनपद-विशेषा । कृष्टेन पच्यन्त इति कृष्टपच्या । 'राजसूय'—इत्यादिना कर्मकर्त्तरि क्यप्प्रत्ययान्तो निपात । तद्विपरीता अकृष्टपच्या इव । कृषिर्येषामस्तीति तै ।

कृषीवल , कर्षकरित्यर्थ 'रज कृषि'–इत्यादिना वराच प्रत्यय । 'बले' इति दीर्घ सुखेनाक्लेशेन लभ्या लब्धुं शक्या सस्यसम्पदो दधतो धारयन्त । नाभ्यस्ताच्छतु इति नुमागमप्रतिषेध । चकासति सर्वोत्कर्षेण वर्तन्त इत्यर्थ । अदभ्यस्तात्' इति झेरदादेश । जक्षित्यादय षट्' इत्यभ्यस्तसंज्ञा । सम्पन्नजनपदत्वादस तापकरत्वाच्च दु साध्योऽयमिति भाव ॥१७॥

प्रकरण—दुर्योधन की नीतियो और प्रशासन के तरीको का वर्णन करता हुआ वनेचर बताता है कि किस प्रकार उसने प्रजा हितकारी कार्यों को किया है । इन कार्यों से उत्पन्न हुई कुरुदेश की समृद्धि का वह वर्णन कर रहा है—

उदारकीर्तेरुदय दयावत
प्रशान्तबाध दिशतोऽभिरक्षया ।
स्वय प्रदुग्धेऽस्य गुणैरुपस्नुता
वसूपमानस्य वसूनि मेदिनी ॥१८॥

अन्वय उदारकीर्ते दयावत अभिरक्षया प्रशान्तबाधम् उदयम दिशत वसूपमानस्य अस्य गुणै उपस्नुता मेदिनी वसूनि स्वय प्रदुग्धे ।

संस्कृत व्याख्या—'उदारकीर्ते' उदारा महती कीर्ति यश यस्य तस्य महायशस्विन 'दयाव त दयागुणेन युक्तस्य परदु खनाशकस्य अभिरक्षया' प्रजाना रक्षा विधाय 'प्रशान्तबाध' प्रशान्ता प्रशमिता बाधा उपद्रवाणि यस्मिन तम 'उदयम' उन्नतिं 'दिशत ' सम्पादयत 'वसूपमानस्य' वसु कुबेर उपमान यस्य तस्य कुबेरसदृशस्य अस्य दुर्योधनस्य 'गुणै ' दयादाक्षिण्यादिभि उपस्नुता उपप्लुता मेदिनी' वसु धरा 'वसूनि' समृद्धय 'स्वय' स्वत 'प्रदुग्धे' प्रदुग्धा भवति । अनायासेन पृथिवी तस्मै सकला सम्पत्तय वितरति इति भाव ।

हिन्दी अर्थ—महान यशस्वी दयावान प्रजा की रक्षा करने से बाधाओ से रहित उन्नति को सम्पादित करते हुये, कुबेर के सदृश उस दुर्योधन के दया आदि गुणों से सराबोर होती हुई पृथिवी स्वय ही धनो को दुह देती है ।

भाव दुर्योधन की नीति और कार्यों से उसको महान् यश प्राप्त हुआ

है। वह प्रजा के दुःखो को दूर करने के लिये सदा तत्पर रहता है। प्रजा की रक्षा करके उसने सब बाधायें दूर कर दी है। इस प्रकार कुरुदेश मे बहुमुखी उन्नति हो रही है। अत उसको अनायास ही सब प्रकार की सम्पत्तियाँ प्राप्त हो गयी हैं और वह कुबेर के समान सम्पत्तिशाली हो गया है।

वाच्यपरिवर्तन—उदारकीर्ते दयावत अभिरक्षया प्रशान्तबाधम् उदयम् दिशत वसूपमानस्य अस्य गुण उपस्नुतया मेदिन्या वसूनि स्वयम प्रदुह्यन्ते।

टिप्पणियाँ

उदारकीर्ते—उदारा कीर्ति यस्य तस्य। बहुव्रीहि समास। उद + ऋ + घञ = उदार। कृ + क्तिन ऊतियूतिजूतिसातिहेतिकीर्त्तयश्च सूत्र से निपातन से कीर्ति रूप बना। उदयम—उद + इ + अच = उदय। दयावत – दया अस्य अस्ति अर्थ मे मतुप प्रत्यय, दया + मतुप् + दयावत्। षष्ठी विभक्ति का एक वचन—दयावत। प्रशान्तबाधम्—प्रशान्ता बाधा यस्मिन तत। बहुव्रीहि समास। प्र + शम् + क्त + टाप् = प्रशान्ता। बाध + अ + टाप = बाधा। दिशत —दिश + शतृ = दिशत। षष्ठी विभक्ति का एकवचन = दिशत। अभिरक्षया—अभि + रक्ष + अ + टाप = अभिरक्षा। तृतीया विभक्ति का एक वचन = अभिरक्षया। करणकारक मे तृतीया विभक्ति हुई। प्रदुग्धे—प्र उपसर्ग पूर्वक दुह धातु से आत्मनेपद मे लट लकार प्रथम पुरुष का एकवचन। उपस्नुता – उप + स्नु + क्त + टाप। वसूपमानस्य—वसु उपमान यस्य तस्य। बहुव्रीहि समास। उप + मा + ल्युट (अन) = उपमान। मेदिनी = मेद अस्याम् अस्ति इति मेदिनी। जब विष्णु भगवान ने मधु और कैटभ नाम के दैत्यों का संहार किया था, तो उस समय यह पृथिवी उनके मेद से ढक गयी थी, इसलिये इस पृथिवी का नाम मेदिनी पड़ा।

अलंकार—समासोक्ति और उपमा। समासोक्ति अलंकार का लक्षण—

समासोक्ति परिस्फूर्ति प्रस्तुतेऽप्रस्तुतस्य चेत।

प्रस्तुत वृत्तान्त के कहने पर विशेषणों के सामर्थ्य से यदि अप्रस्तुत का बोध होता हो तो समासोक्ति अलंकार होता है। यहाँ प्रस्तुत पृथिवी के

वर्णन करने से विशेषण के सामर्थ्य से अप्रस्तुत गौ का वृत्तान्त द्योतित होता है। दुर्योधन के गुणो से सराबोर होती हुई पृथिवी स्वयं रत्नो को दुह देती है, इस वृत्तान्त के वर्णन से किसी गौभक्त को सेवा से प्रसन्न होकर उसके लिये स्वयं दूध दुह देने वाली गौ का वृत्तान्त द्योतित हो रहा है।

'वसूपमानस्य' इसमे उपमा अलंकार है। इसमे दुर्योधन उपमेय, वसु उपमान और उपमान शब्द उपमा वाचक है। धन सम्पन्न होना साधारण धर्म है। इसलिये उपमा के चारो अंगो के होने से यह पूर्णोपमा है।

छन्द—वंशस्थ।

विशेष कथन—राजा यदि गुणो से युक्त है और राष्ट्र तथा प्रजा की अच्छी प्रकार रक्षा करता है, तो उसकी प्रजा तो सम्पन्न होगी ही, वह स्वयं भी प्रभूत मात्रा मे धन सम्पत्ति प्राप्त करेगा।

घण्टापथ टीका—उदारेति। उदारकीर्तेर्महायशसः। 'उदारो दातृमहतोः' इत्यमरः॥ दयावतः परदुःखप्रहाणेच्छोः। अत एव प्रशान्तबाधं प्रशमितोपद्रवं यथा स्यात्तथेति क्रियाविशेषणम्। उर्वीविशेषणं वा। 'वा दान्तशान्त'—इत्यादिना शमिधातोर्ण्यन्तान्निष्ठान्तो निपातः। अभिरक्षया सम्यक्त्राणेनोदयं वृद्धिं दिशतः सम्पादयतो वसूपमानस्य कुबेरोपमस्य। 'वसुमयूखाग्निधनाधिपेषु' इति विश्वः। अस्य दुर्योधनस्य गुणदयादाक्षिण्यादिभिरुपस्नुता द्राविता मेदिनी वसूनि धनानि। 'वसु तोये धने मणौ' इति वैजयन्ती। स्वयं प्रदुग्धे। अक्लेशेन दुह्यत इत्यर्थः। दुहेः कर्मकर्तरि लट्। 'न दुहस्नुनमां यक्चिणौ' इति यक्प्रतिषेधः। यथा केनचिद् विदग्धेन नवप्रसूता रक्षिता च गौः स्वयं प्रदुग्धे तद्वदिति भावः। अलंकारस्तु विशेषणमात्रसाम्यादप्रस्तुतस्य गम्यत्वे समासोक्तिः' इति सर्वस्वकारः। अत्र प्रतीयमानया गवा सह प्रकृताया मेदिन्या भेदेऽभेदलक्षणातिशयोक्तिवशाद्दोह्यत्वेनोक्तिरिति संक्षेपः॥१८॥

***

प्रकरण—सेवको और प्रजा की दुर्योधन के प्रति अनुरक्ति और उसके ऐश्वर्य का वर्णन करके वनेचर बताता है कि अनेक योद्धा प्राणो से भी उस दुर्योधन की रक्षा करने के लिये उद्यत है—

महौजसो मानधना धनार्चिता
धनुर्भृत संयति लब्धकीर्त्तय ।
न संहतास्तस्य न भिन्नवृत्तय
प्रियाणि वाञ्छन्त्यसुभि समीहितुम् ॥१८॥

अन्वय—महौजस मानधना धनार्चिता लब्धकीर्त्तय न संहता न भिन्नवृत्तय धनुर्भृत संयति असुभि तस्य प्रियाणि वाञ्छति ।

संस्कृत व्याख्या— महौजस ' महान प्रचण्ड ओज तेज यषा ते प्रचण्ड तेजस्विन 'मानधना ' मान दर्प एव धन सम्पत्ति यषा ते दर्पशालिन 'धनार्चिता ' धन दुर्योधनप्रदत्त धन अर्चिता सत्कृता लब्धकीर्त्तय लब्धा स्वयुद्धकौशलेन अधिगता कीर्ति यै ते न संहता ' स्वार्थनिष्ठया परस्पर न संगता अथवा शत्रुभि भेदयितुमशक्या 'न भिन्नवृत्तय ' न भिन्ना स्वामिविपरीता वृत्ति व्यवहार येषा ते दुर्योधनानुकूला धनुर्भृत ' धनूषि चापान बिभ्रति धारयन्ति इति ते धनुर्धारिण 'संयति' युद्धे 'असुभि प्राण अपि तस्य दुर्योधनस्य प्रियाणि' अभिलषितानि 'समीहितु' कर्तु वाञ्छन्ति' इच्छन्ति । ते धनुर्भृत प्राणानपि अविगणय्य तस्य रक्षा विधास्यन्ति इति भाव ।

हिन्दी अर्थ—महातेजस्वी, गर्वीले, धन द्वारा सत्कार किये गये, कीर्ति शाली, परस्पर गुटबन्दी न करने वाले अथवा शत्रुओं से न मिल सकने वाले, स्वामी के अनुकूल व्यवहार करने वाले धनुर्धारी युद्ध मे प्राणो द्वारा भी उसका प्रिय करना चाहते हैं ।

भाव—दुर्योधन की सेवा मे अनेक वीर युद्धकुशल योद्धा है । वे अत्यधिक तेजस्वी है । बहुत गर्वीले है । धन द्वारा दुर्योधन उनका सत्कार करता है । उनकी युद्धकुशलता बहुत प्रसिद्ध है । वे परस्पर गुटबन्दी नही करते और ना ही शत्रुओं द्वारा फोडे जा सकते हैं । उनका व्यवहार सदा दुर्योधन के अनुकूल रहता है । युद्ध होने पर वे प्राणो की भी परवाह न करके उसका हितसाधन करेगे ।

वाच्यपरिवर्तन –महौजोभि मानधनै धनार्चितै लब्धकीर्तिभि न संहतै न भिन्नवृत्तिभि धनुर्भृद्भि सयति असुभि तस्य प्रियाणि समीहितुम वाञ्छयते ।

टिप्पणियाँ

महौजस —महान ओज येषा ते । बहुव्रीहि समास । **मानधना** —मान धन येषा ते बहुव्रीहि समास । **धनार्चिता** —धनेन अर्चिता । तृतीया तत्पुरुष समास । अर्च+णिच+क्त=अर्चित । अथवा अर्चा अस्य अस्ति अथ मे अर्चा+इतच्=अर्चित । **धनुर्भृत** —धनु बिभर्ति अथ मे क्विप प्रत्यय धनु +भृ +क्विप=धनभृत प्रथमा विभक्ति के बहुवचन मे=धनुर्भृत । **सयति**—सम्+यम+क्विप=सयत् । सप्तमी विभक्ति का एकवचन-= सयति । **लब्धकीर्तय** —लब्धा कीर्ति यै ते । बहुव्रीहि समास । लभ्+क्त+टाप=लब्धा । **सहता** —स+हन+क्त=सहत । प्रथम विभक्ति का बहुवचन=सहता । **भिन्नवृत्तय** -भिन्ना वृत्ति येषा ते । बहुव्रीहि समास । भिद्+क्त=भिन्न । वृत+क्तिन=वृत्ति । **समीहितुम**=सम+ईह्+तुमुन ।

अलकार—परिकर और काव्यलिङ्ग । परिकर अलकार का लक्षण—

अलकार परिकर साभिप्राये विशेषणे ।

जहाँ अभिप्राय से गर्भित विशेषणो का प्रयोग किया जावे, वहाँ **परिकर** अलकार होता है । इस पद्य मे महौजस आदि विशेषणो का प्रयोग विशेष अभिप्राय से किया गया है । महौजस मानधना, लब्धकीर्तय विशेषणो से अभिप्राय है कि वे सैनिक महातेजस्वी, गर्वीले और युद्धकौशल मे निपुण होने के कारण आसानी से जीते नही जा सकते । धनार्चिता से अभिप्राय है कि दुर्योधन प्रभूत मात्रा मे उनको धन देकर उनको प्रसन्न रखता है, अत धन से उनको प्रलोभित नही किया जा सकता । न सहता और न भिन्नवृत्तय से अभिप्राय है कि यह आशा करना व्यर्थ है कि उनको किसी प्रकार फोडा जा सकता है या वे कभी दुर्योधन के विपरीत व्यवहार कर सकते हैं । इस प्रकार अभिप्राय से गर्भित विशेषणो का प्रयोग होने के कारण यहाँ परिकर अलंकार है ।

'महौजस' आदि पदों के अर्थों को प्राण देने के लिये भी उद्यत रहना इस हेतु के रूप मे उल्लेख किये जाने मे यहाँ काव्यलिङ्ग अलकार भी है।

छन्द—वशस्थ।

विशेष कथन—राजाओ के पास ऐसे योद्धा रहने चाहियें, जो महातेजस्वी, गर्वीले और युद्धविद्या मे निपुण हो। उसको चाहिये कि धन से उनका सदा सत्कार करता रहे। परन्तु उसको इसके साथ यह भी ध्यान रखना चाहिये कि वे योद्धा उसके विरुद्ध गुटबन्दी न बना ले। अथवा शत्रुओ से न मिल जावें। उसको यह भी देखना चाहिये कि योद्धा राजा के प्रति उद्दण्ड न हों। सदा अनुकूल व्यवहार करने वाले हो। ऐसे योद्धा प्राणो की भी परवाह न करके राज्य और राजा की रक्षा करते है।

घण्टापथ टीका—महौजस इति। महौजसो महाबला। अन्यथा दुर्बला नामनुपकारित्वादिति भाव। मान कुशलीलाद्यभिमान एव धन येषा ते मानधना। अन्यथा कदाचिद् बलदर्पाद्विकुर्वीरन् इति भाव। धनार्चिता धनै रर्चिता सत्कृता। अन्यथा परिग्रहादन जह्युरिति भाव। सयति सग्रामे लब्धकीर्तय। बहुयशस इत्यर्थ। अन्यथा कदाचित् मुह्येयुरिति भाव। सहता मिथ सगता स्वार्थनिष्ठा न भवन्तीति न सहता। नञर्थस्य न शब्दस्य 'सुप्सुपेति' समास। भिन्नवृत्तयो मिथो विरोधात्स्वामिकार्यकरा न भवन्तीति न भिन्नवृत्तय। पूर्ववत्समास। अन्यथा स्वामिकार्यविघातकतया स्वामि द्रोहिण स्युरिति उभयत्रापि तात्पर्यार्थ। धनुर्भृता धानुष्का। आयुधीयमात्रोपलक्षणमेतत्। *प्राणा याद्धनुग्रहणम्।* तस्य दुर्योधनस्यासुभि प्राणै प्रियाणि समीहितु कर्तु वाञ्छन्ति। आनृण्यार्थ प्राणादान्तुमिच्छन्ति। अन्यथा दोषस्मरणादिति भाव। अत्र महौजसादिपदार्थाना प्राणदानकर्तव्यता प्रति विशेषणगत्या हेतुत्वाभिधानात्काव्यलिंगमलकार। लक्षण तूक्तम्। तथा साभिप्रायविशेषणत्वात्परिकरालकार इति द्वयोस्तिलतण्डुलवद् विभक्ततया स्फुरणात्ससृष्टि ॥१९॥

प्रकरण—दुर्योधन के प्रति उसकी प्रजा और सेवको की अनुरक्ति, उसके

ऐश्वर्य और उसके योद्धाओं के गुणों का वर्णन करके वनेचर युधिष्ठिर को बताता है कि उसने देश और विदेशों के समाचारों को जानने का उत्तम प्रबन्ध किया है—

महीभृतां सच्चरितैश्चरैः क्रियाः
स वेद निःशेषमशेषितक्रियः।
महोदयैस्तस्य हितानुबन्धिभिः
प्रतीयते धातुरिवेहितं फलैः ॥२०॥

अन्वय—अशेषितक्रियः सः सच्चरितैः चरैः महीभृताम् क्रियाः निःशेषम् वेद। धातुः इव तस्य ईहितम् महोदयैः हितानुबन्धिभिः फलैः प्रतीयते।

संस्कृत व्याख्या—'अशेषितक्रियः' अशेषिताः समापिताः क्रियाः कार्याणि येन सः सर्वेषामेव कार्याणां समापकः, न किमपि तस्य कार्यशेषत्वेन तिष्ठति इति भावः। सः दुर्योधनः 'सच्चरितैः' सत् शुद्धं चरितं आचरणं येषां तैः सदाचारिभिः 'चरैः' गुप्तचरैः 'महीभृताम्' भूपतीनां 'क्रियाः' व्यापाराणि 'निःशेषं' साकल्येन 'वेद' जानाति। सः स्वराष्ट्रेषु परराष्ट्रेषु च विधीयमानानि सर्वाणि व्यापाराणि गुप्तचरैः वेद इति भावः। परं 'धातुः' ब्रह्मणः इव तस्य दुर्योधनस्य 'ईहितं' चेष्टितं 'महोदयैः' महान् उदयः वृद्धिः येषां तैः महावृद्धिशालिभिः 'हितानुबन्धिभिः' हितः शुभः अनुबन्धः परिणतिः येषां तैः शुभपरिणामैः 'फलैः' सिद्धिभिः 'प्रतीयते' ज्ञायते। सः सर्वेषामेव क्रियाकलापान् जानाति परं तस्य चेष्टितं सदैव ज्ञायते यदा शुभपरिणामं फलं दृष्टिगोचरं भवति।

हिन्दी अर्थ—सब कार्यों को पूरा करने वाला, उनको कभी अधूरा न छोड़ने वाला, वह दुर्योधन उत्तम आचरण वाले गुप्तचरों द्वारा राजाओं के कार्यों को पूर्ण रूप से जानता है। परन्तु विधाता के समान उसकी चेष्टायें महान् वृद्धि को उत्पन्न करने वाले शुभ परिणामों से युक्त फलों द्वारा ही अनुमान की जाती है।

भाव—दुर्योधन कभी भी किसी कार्य को अधूरा नहीं छोड़ता। उसके द्वारा उत्तम आचरण वाले ईमानदार गुप्तचर नियुक्त किये हुये हैं। वे सभी राज्यों मे फैले हुये है और वहाँ राजाओं द्वारा किये जाने वाले कार्यों का पूरा विवरण उसको भेजते रहते हैं। इस प्रकार वह सभी राज्यों के कार्यों को—वे क्या कर चुके हैं, क्या कर रहे हैं और क्या करेंगे, जान लेता है। परन्तु वह क्या करेगा, इस बात को कोई नहीं जान पाता। इसका ज्ञान तो तभी होता है, जब उसके हितकारी कार्यों का शुभ परिणाम प्रकट होता है।

वाच्यपरिवर्तन—अशेषितक्रियेण तेन सच्चरितैः चरैः महीभृतां क्रिया निःशेषं वेदिता। धातुः इव तस्य ईहितेन महोदयैः हितानुबन्धिभिः फलं प्रतीयते।

टिप्पणियाँ

महीभृताम्—मही बिभर्ति अर्थ मे मही+भृ+क्विप=महीभृत। षष्ठी विभक्ति का बहुवचन महीभृताम्। सच्चरित—सत+चर+क्त=सच्चरित। तृतीया विभक्ति का बहुवचन=सच्चरितैः। वेद—विद् धातु=लिट लकार प्रथम पुरुष का एकवचन। निःशेषम्—निर्गत शेषं यस्मात् यथा स्यात्तथा। यह क्रिया विशेषण है। अशेषितक्रियः—न शेषिता अशेषिता। नञ् तत्पुरुष समास। अशेषिता क्रिया येन स अशेषितक्रिया। बहुव्रीहि समास। शेष+णिच्+क्त=शेषित। अथवा शेषः सञ्जातः अस्य इति शेषित। **महोदयैः**—महान् उदयः येषां तैः। बहुव्रीहि समास। उद्+इ+अच=उदय। **हितानुबन्धिभिः**—हितं अनुबन्धः येषां तैः। बहुव्रीहि समास। धा+क्त=हित। अनु+बन्ध+घञ्=अनुबन्ध। हितानुबन्ध+इनि=हितानुबन्धिन। तृतीया विभक्ति का बहुवचन=हितानुबन्धिभिः। प्रतीयते—प्रति+इण+यक=प्रतीय। लट लकार प्रथम पुरुष का एकवचन=प्रतीयते। धातुः—धा+तृच=धातृ। षष्ठी विभक्ति का एकवचन=धातुः। **ईहितम्**—ईह्+क्त=ईहित।

अलङ्कार—अनुमान और उपमा। अनुमान अलंकार का लक्षण—

अनुमानं तदुक्तं यत् साध्यसाधनयोर्वचः।

जहाँ साध्य (सिद्ध करने योग्य वस्तु) और साधन (सिद्ध करने वाला हेतु) का कथन किया जाता है, वहा अनुमान अलकार होता है। यहाँ साध्य फल और साधन ईहित का कथन किया जाने से अनमान अलकार है।

दुर्योधन का सादृश्य धाता से कहने के कारण उपमा अलकार है। जिस प्रकार धाता की चेष्टाओ का अनुमान करके उसके कार्यों सृष्टि आदि की रचना से किया जाता है उसी प्रकार दुर्योधन की चेष्टाओ का अनुमान कार्य रूप मे फलित हुये उनके शुभ परिणामो को देखकर किया जा सकता है।

छन्द—वशस्थ।

विशेष कथन—राजा को चारचक्षु कहते है। उसे चाहिये कि गुप्तचरो द्वारा अपने और दूसरे राष्ट्रो मे होने वाले सभी व्यापारो को जानता रहे। परन्तु वह क्या करने वाला है, इसका पता किसी को नही लगना चाहिये। उसके उद्देश्यो का पता तभी लगना चाहिये, जबकि उसकी चेष्टायें फलीभूत हो जावें।

घण्टापथ टीका महीभृतामिति। अशेषितक्रिय समापितकृत्य। आफलोदयकर्मेत्यर्थ। स दुर्योधन सच्चरितै शुद्धचरित। अवञ्चकरित्यर्थ। चरतीति चरास्तै चर। प्रणिधिभि। 'पचाद्यच्'। महीभृता क्रिया प्रारम्भानपि वेद वेत्ति। 'विदो लटो वा' इति णलादेश। स्वरहस्य तु न कश्चिद् वेदेत्याह—महोदयैरिति। धातरिव तस्य दुर्योधनस्येहितमुद्योगो महोदयैर्महाफलवद्भि। हितमनुबध्नन्त्यनुबध्नन्तीति हितानुबन्धिभि। स्व तरित्यर्थ। फलै कार्यसिद्धिभि प्रतीयते ज्ञायते। फलानुमेयास्तस्य प्रारम्भा इत्यर्थ ॥२०॥

प्रकरण—वनेचर युधिष्ठिर को बता रहा है कि दुर्योधन की नीति के कारण उसके सेवक और प्रजा उसके प्रति अनुरक्त है। साम आदि उपायो का प्रयोग करके उसने प्रचुर सम्पत्ति प्राप्त कर ली है। महान् वीर उसकी इच्छाओ को पूरा करने के लिये उद्यत रहते हैं और वह अपने तथा दूसरे राष्ट्रो मे होने वाले सभी व्यापारो को गुप्तचरो के द्वारा जान लेता है। अब वह दुर्योधन की नीति के सूक्ष्म फलो का वर्णन करता है—

न तेन सज्यं क्वचिदुद्यतं धनु
कृतं न वा कोपविजिह्ममाननम् ।
गुणानुरागेण शिरोभिरुह्यते
नराधिपैर्माल्यमिवास्य शासनम् ॥२१॥

अन्वय—तेन क्वचित् सज्यं धनुः न उद्यतम्, वा आननम् कोपविजिह्मम् न कृतम् । नराधिपैः अस्य शासनम् गुणानुरागेण शिरोभिः माल्यम् इव उह्यते ।

संस्कृत व्याख्या—तेन दुर्योधनेन क्वचित' कस्मिंश्चिदपि स्थाने अवसरे वा 'सज्यं' ज्यया मौर्व्या सह सज्यं प्रत्यञ्चायुक्तं धनुः' चापम न उद्यतम्' उत्थापितम । 'वा' अथवा 'आननम' मुखं कोपविजिह्मम' कोपेन क्रोधेन विजिह्मम् कुटिलं न कृतं' न विहितम । 'नराधिपैः राजभिः अस्य दुर्योधनस्य 'शासनम' आदेशः 'गुणानुरागेण' गुणेषु शौर्यदयादाक्षिण्यादिषु अनुरागेण स्नेहेन हेतुना 'शिरोभिः मस्तकैः 'माल्यम इव' स्रग इव 'उह्यते' धार्यते । राजानः दुर्योधनस्य आदेशं गुणानुरागेण स्वयमेव पालयन्ति न तु भयेन ।

हिन्दी अर्थ—उस दुर्योधन ने कभी भी डोरी चढ़े हुये धनुष को नहीं उठाया है । उसने कभी भी क्रोध से अपने मुख को टेढ़ा नहीं किया है । अधीनस्थ राजा उसके आदेश को उसके गुणों के प्रति अनुराग के कारण सिरों से मालाओं के समान वहन करते हैं ।

भाव—दुर्योधन ने इस प्रकार से सफल नीति का प्रयोग किया है कि उसको अपने आदेश का पालन कराने के लिये कभी शस्त्र नहीं उठाने पड़ते और कभी क्रोध भी नहीं करना पड़ता । अधीन राजा उसके गुणों के कारण उससे स्नेह करते हैं और इसीलिये उसके आदेश का पालन करते हैं ।

वाच्यपरिवर्तन—स क्वचित सज्यम धनुः न उद्यच्छते । वा आननम कोपविजिह्मम् करोति । नराधिपाः अस्य शासनं गुणानुरागेण शिरोभिः माल्यम इव स्वयम वहन्ति ।

टिप्पणियाँ

सज्यम—ज्यया सह वर्तमानम । बहुव्रीहि समास । ज्या + अण् + टाप् ,

ज्या । उद्यतम्—उद्+यम्+क्त । कोपविजिह्मम्—विशेषण जिह्मम् विजिह्मम् । कोपेन विजिह्मम् कोपविजिह्मम् । तृतीया तत्पुरुष समास । कुप+घञ =कोप । आननम्—आ+अन+ल्युट (अन) आनन । गुणानुरागेण—गुणेषु अनुरागेण । सप्तमी तत्पुरुष समास । अनु+रञ्ज+घञ =अनुराग । हेतु होने से यहां 'हेतौ' सूत्र से तृतीया विभक्ति हुई । उह्यते—वह+यक धातु से लट लकार प्रथम पुरुष का एकवचन । नराधिपैः—नराणाम् अधिप षष्ठी तत्पुरुष समास । नृ+अच=नर । अधि पाति रक्षति अर्थ से अधि+पा+क=अधिप । माल्यम्—माला एव माल्यम् । माला+ष्यञ=माल्य । शासनम्—शास+ल्युट (अन)=शासन ।

अलङ्कार—उपमा ।

जिस प्रकार सुरभि आदि गुणों के कारण माला को सिर पर वहन किया जाता है, उसी प्रकार दुर्योधन के गुणों के कारण दूसरे राजा उसके गुणों को वहन करते हैं, अर्थात उनका पालन करते हैं । सादृश्य का कथन करने से इसमें उपमा अलकार है । यहां माल्य उपमान, शासन उपमेय, वहन करना आदि साधारण धर्म और इव वाचक शब्द हैं । उपमा के चारों अङ्गों के होने से यह पूर्णोपमा है ।

छन्द—वंशस्थ ।

विशेष कथन—राजा को इतना प्रभावशाली होना चाहिये कि अपने आदेशों का पालन कराने के लिये उसे न तो कभी शस्त्रों को उठाने की आवश्यकता हो और न कभी क्रोध ही करना पड़े ।

घण्टापथ टीका—नेति । तेन राज्ञा क्वचित्कुत्रापि । सह ज्यया मौर्व्या सज्यम् । मौर्वी ज्या शिञ्जिनी गुणः' इत्यमरः । 'तेन सहेति तुल्ययोगे' इति बहुव्रीहिः । धनुरुद्यतं नोर्ध्वीकृतम् । आननं च कोपविजिह्मं कोपकुटिलं न कृतम् । यस्य कोप एव नोदेति कुतस्तस्य युद्धप्रसक्तिरिति भावः । कथं तर्हि यशः कारयति राज्ञ इत्याह—गुणेति । गुणेषु दयादाक्षिण्यादिष्वनुरागेण प्रेम्णा । माल्यपक्षे सूत्रानुषङ्गेण । यद्वा सौरस्यगुणलाभेन नराधिपैरस्य शासनमाज्ञा । मालैव माल्यं तद्विव । 'चातुर्वर्ण्यादित्वात्स्वार्थे ष्यञ्' इति क्षीरस्वामी । शिरो

भिरुह्यते धायते । 'वचिस्वपियजादीना किति' इति यकि सम्प्रसारगगम । अत्रोपमा स्फुटव ।।२१।।

प्रकरण—दुर्योधन की नीतियो को सफलता, समद्धि प्रभाव और शक्ति का वणन करके वनेचर युधिष्ठिर को बताता है कि वह धार्मिक कत्तव्यो का भी पालन करता है—

स यौवराज्ये नवयौवनोद्धत
निधाय दु शासनमिद्धशासन ।
मखेष्वखिन्नोऽनुमत पुरोधसा
धिनोति हव्येन हिरण्यरेतसम् ।।२२।।

अ वय—इद्धशासन स नवयौवनोद्धतम् दु शासनम् यौवराज्ये निधाय मखेषु अखि न पुरोधसा अनुमत हव्येन हिरण्यरेतसम् धिनोति ।

सस्कृत व्याख्या—'इद्धशासन' इद्ध प्रदीप्तम् अप्रतिहतम इति भाव शासनम आदेश 'यस्य स दुर्योधन 'नवयौवनोद्धत' नवेन नूतनेन यौवनेन तारुण्येन उद्धत गर्वित 'दु शासनम एत नामक स्वय अनुज 'यौवराज्य' युवराजस्य पदे 'निधाय' नियुक्त कृत्वा स्वय मखेषु' यज्ञेषु 'अखि न ' विश्रा तिरहित खेद न कुवन इति वा 'पुरोधसा' पुरोहितेन 'अनुमत अनुज्ञात उपदिष्ट वा 'हव्येन' हविषा घृतसमिधादीना हुत्वा 'हिरण्यरेतसम' अग्निम 'धिनोति धारयति प्रीणयति वा ।

हिन्दी अथ—अप्रतिहत आदेश वाला वह दुर्योधन नवीन यौवन के मद से गर्वीले छोटे भाई दु शासन को युवराज के पद पर नियुक्त करके यज्ञो मे थकावट का अनुभव न करता हुआ पुरोहित से अनुमति पाकर हवियो से अग्नि को प्रसन्न कर रहा है ।

भाव—दुर्योधन की नीतियो के कारण कोई भी उसके आदेश का उल्लघन नही कर सकता । केवल सासारिक उपायो पर निभर न रह कर उसने अब देवताओ को भी प्रस न करने का उपक्रम आरम्भ कर दिया है ।

उसने दुःशासन को युवराज के पद पर नियुक्त कर दिया है और इस प्रकार शासन की चिन्ता से मुक्त होकर वह पुरोहितों द्वारा बताये गये मार्ग से यज्ञों का अनुष्ठान कर रहा है।

वाच्यपरिवर्तन—इद्धाशासनेन तेन नवयौवनोद्धत दुःशासन यौवराज्ये निधाय मखेषु अखिन्नेन पुरोधसा अनुमतेन हव्यम् हिरण्यरेता धीयते।

टिप्पणियाँ

यौवराज्ये—युवा चासौ राजा युवराज। कर्मधारय समास। युवराजस्य भाव अर्थ मे 'गुणवचनब्राह्मणादिभ्य ष्यञ च' सूत्र से ष्यञ प्रत्यय। युवराज + ष्यञ = यौवराज्य। सप्तमी विभक्ति का एकवचन = यौवराज्ये। **नवयौवनोद्धतम** - नव यौवन नवयौवनम कर्मधारय समास। नवयौवनेन उद्धतम नवयौवनोद्धतम् तृतीया तत्पुरुष समास। यूनो भाव अर्थ मे युवन + अण = यौवन। उद् + हन + क्त = उद्धत। निधाय—नि + धा + क्त्वा (ल्यप)। **दुःशासन** - दुःखेन शास्यते य अथवा दुष्ट शासन यस्य स। बहुव्रीहि समास दुर + शास + ल्युट (अन) = दुःशासन। इद्धशासन—इद्ध शासन यस्य स बहुव्रीहि समास इन्ध + क्त = इद्ध। शास + ल्युट (अन) = शासन। **मखेषु** मख + घ = मख। सप्तमी विभक्ति का बहुवचन = मखेषु। अखिन्न - न खिन्न। नञ तत्पुरुष समास। खिद् + क्त = खिन्न। अनुमत—अनु + मन् + क्त। पुरोधसा—पुर धारयति अर्थ मे पुरस + धा + असि = पुरोधस। तृतीया विभक्ति का एकवचन - पुरोधसा। हिरण्यरेतसम - हिरण्य रेत यस्य तम। बहुव्रीहि समास। सुनहरी कान्ति वाला होने से अग्नि को हिरण्यरेता कहा गया।

अलंकार—यमक। यमक अलंकार का लक्षण—

अर्थे सत्यर्थभिन्नाना वर्णानां स पुन श्रुति। यमकम्॥

अर्थ होने पर भिन्न अर्थों वाले वर्णों की उसी क्रम में आवृत्ति होने पर यमक अलंकार होता है। दुःशासनमिद्धशासन इसमे भिन्न अर्थों वाले शासन इस वर्णसमूह की आवृत्ति होने से यमक अलंकार है।

छन्द—वंशस्थ।

विशेष कथन—शासकों को केवल भौतिक उन्नति मे ही अपनी इति

कर्त्तव्यता नहीं समझ लेनी चाहिये। उनकी धर्म की वृद्धि करने के भी उपाय करने चाहिये और इसके लिये यज्ञों का अनुष्ठान करना चाहिये।

घण्टापथटीका—स इति। दुःशासनोऽनतिहताज्ञः स दुर्योधनो नवयौवनोद्धतं प्रगल्भम्। धुरं भारमित्यर्थः। दुःखेन शास्यत इति दुःशासनस्तस्मै। 'भाषायां शासियुधि—इत्यादिना खलर्थे युच्प्रत्ययः। यौवराज्ये युवराजकर्मणि। ब्राह्मणादित्वात्ष्यञ् प्रत्ययः। निधाय। नियुज्येत्यर्थः। पुरोधसा पुरोहितेनानुमतोऽनुज्ञातः तस्मिन् याजके सतीत्यर्थः। तदुल्लङ्घने दोषस्मरणादिति भावः। निष्ठा' इति भूतार्थे क्तः। न तु मतिबुद्धि' इत्यादिना वर्त्तमानार्थे। अन्यथा पुरोधसा इत्यत्र 'क्तस्य च वर्त्तमाने' इति षष्ठी स्यात्। अखिन्नोऽनलसो मखेषु क्रतुषु हव्येन हविषा हिरण्यं रेतो यस्य तं हिरण्यरेतसमनलं धिनोति प्रीणयति। धि वे प्रीणनार्थाद् धिन्विकृण्व्योर च' इत्युप्रत्ययः। नकारश्चान्तादेशः ॥२२॥

प्रकरण—दुर्योधन की सब प्रकार की सफलताओं और उसके धार्मिक अनुष्ठानों का वर्णन करके वनेचर युधिष्ठिर को बताता है कि इस प्रकार शक्ति का संग्रह कर लेने पर भी वह दुर्योधन आपसे सदा डरता रहता है—

प्रलीनभूपालमपि स्थिरायति
प्रशासदावारिधि मण्डलं भुवः।
स चिन्तयत्येव भियस्त्वदेष्यतो-
रहो दुरन्ता बलवद्विरोधिता ॥२३॥

अन्वय—सः प्रलीनभूपालम् स्थिरायति आवारिधि भुवः मण्डलम् प्रशासद् अपि त्वदेष्यतो एव भियः चिन्तयति। अहो बलवद्विरोधिता।

संस्कृत व्याख्या—स दुर्योधन 'प्रलीनभूपालं' प्रलीना विनष्टा भूपाला शत्रुराजानः यस्मिन् तत् शत्रुरहितम् इत्यर्थः, 'स्थिरायति' स्थिरा दृढमूला·

आयति भविष्य तत, चिरस्थायि इत्यर्थ ' 'आवारिधि' समुद्रपर्यन्त 'भुव ' पृथिव्या 'मण्डल' वलय 'प्रशासद अपि' शासन' कुर्वन्नपि 'त्वदेष्यती ' त्वत्त भवत सकाशात् एष्यतो आगमिष्यती एव भिय ' भयहेतून चिन्तयति' विचारयति । भीतय त्वत्त एव आगमिष्यन्ति इत्येव तस्य धारणा । अहो इति आश्चर्ये 'बलवद्विरोधिता' बलवद्भि प्रबल सह विरोधिता शत्रुता 'दुरन्ता' दु खमय अन्त परिणाम यस्या तादृशी भवति । बलवद्भि सह शत्रुतया 'दु खमेव प्राप्यते इत्यर्थ ।

हिन्दी अर्थ—वह दुर्योधन शत्रु राजाओ से रहित, सदा स्थिर रहने वाले, समुद्र पर्यन्त पृथिवी मण्डल का शासन करता हुआ भी तुम्हारे से आने वाले भयो का विचार करता है। अहो बलवानो के साथ शत्रुता करने का परिणाम दु खद ही होता है ।

भाव—इस श्लोक द्वारा दुर्योधन की निबलता की ओर सकेत किया गया है। यद्यपि दुर्योधन ने सभी शत्रु राजाओ को समाप्त कर दिया है, उसका प्रशासन स्थिर हो चुका है, उसके राज्य की सीमाये समुद्र पर्यन्त विस्तृत हैं, तथापि उसको केवल एक आपका ही भय है, क्योकि आप जैसे बलवानो के साथ शत्रुता करने का परिणाम दु ख ही है।

वाच्य परिवर्तन—तेन प्रलीनभूपाल स्थिरायति आवारिधि भुव मण्डल प्रशासता अपि त्वदेष्यन्त्य भिय एव चिन्त्यन्ते । अहो बलवद्विरोधितया दुरन्तया (भूयते) ।

टिप्पणियाँ

प्रलीनभूपालम—प्रलीना भूपाला यस्मिन् तत । बहुव्रीहि समास । प्र+ ली+क्त=प्रलीन । भुव पालयति इति भू+पाल्+अच=भूपाल । **स्थिरायति**—स्थिरा आयति यस्य तत । बहुव्रीहि समास । स्था+किरच= स्थिर । आ+या+क्तिन्=आयति । **प्रशासत**—प्र+शास+शतृ=प्रशासत **भिय**—भी+क्विप=भी । प्रथमा विभक्ति का एकवचन=भिय । **त्वदेष्यती**—त्वत एष्यन्ती । पञ्चमी तत्पुरुष समास । इण धातु से भविष्यत् काल में शतृ प्रत्यय होकर इ+स्य+शतृ+ङीप—एष्यती । **दुरन्ता-**

दु खम् अन्त तस्या सा । बहुव्रीहि समास बलवद्विरोधिता—बलवद्भि विरोधिता । तृतीया तत्पुरुष समास । बलम अस्य अस्ति अथ म मतुप प्रत्यय । बल +मतुप=बलवद् । वि+रुधू+णिनि=विराधिन । विराधिन भाव — विरोधिन्+तल+टाप=विरोधिता ।

अलकार अर्थान्तर यास ।

आपके साथ वर रखने का परिणाम दुर्योधन के लिये दु खपूर्ण है, इस विशेष का समथन बलवानो के साथ शत्रुता रखना परिणाम मे दुख दायी होता है, इस सामा य से विशेष का समथन किया जाने के कारण इस पद्य म अर्थान्तरन्यास अलकार है ।

छ द—वशस्थ ।

विशेष कथन—दुर्योधन की शक्ति और समद्धि का वणन करके भी वनेचर अपने स्वामी के उत्साह को भग करना नही चाहता । वह उसके साहस को तोडना और उसको निराश नही करना चाहता । वह युधिष्ठिर को आशा दिलाता है कि आप अत्यधिक शक्तिशाली हैं । दुर्योधन केवल आपसे ही डरता है । आप उद्योग करके अपने राज्य को पुन प्राप्त कर सकते है

इस श्लोक द्वारा यह भी व्यक्त होता है कि राजा अपन विरोधियो को सम्पूण रूप से ही समाप्त क्यो न कर ले और उसका राज्य कितना भी विस्तीण क्यो न हो जावे, उसको बलवानो के साथ विरोध मोल न ी लेना चाहिए ।

घण्टापथ टीका—प्रलीनेति । स दुर्योधन प्रलीनभूपालम् । नि सपत्नमित्यथ । स्थिरायति । चिरस्थायीत्यथ । भुवो मण्डलमाऽऽवारिधिभ्य आवारि ? । 'आङ मर्यादाऽभिविध्यो ' इत्यव्ययीभाव । प्रशासत्शासय पि । 'जक्षित्यादय षट' इत्यभ्यस्तसज्ञा । 'नाभ्यस्ताच्छतु ' इति नुमागमप्रतिषेध । स्वत एवस्त एष्यती गमिष्यती । धातूनामनेकार्थत्वादुक्तार्थसिद्धि अथवाऽऽङ पूव पाठ । 'एत्येधत्यूठसु' इति वद्धि । 'लट सद् वा' शतृ प्रत्यय । उगितश्च इति ङीप । 'आच्छीनद्योन म् इति विकल्पा नमभाव । भिया भयहेतुना । विपद इत्यथ । चि तयत्यालोचयत्येव । स एवाह—अहो बलवद्विरोधिता दुर ता दुष्टावसाना । सावभौमस्यापि प्रबल सह वरायमाणत्वमनथपयवसायि एवेति तात्पयम् । सामान्येन विशेषसमथनरूपोऽर्था तर यास ॥२३॥

प्रकरण—वनेचर ने दुर्योधन की शक्ति, नीतियों और प्रभाव का वर्णन करके युधिष्ठिर को बताया कि इतना प्रभावशाली होते हुये भी वह केवल आपसे ही डरता है। इस गुप्त रहस्य को मुझ गुप्तचर ने कैसे जाना, अब वह इस बात को बताता है—

कथाप्रसङ्गेन जनैरुदाहृता-
दनुस्मृताखण्डलसूनुविक्रमः।
तवाभिधानाद् व्यथते नताननः
स दुःसहान्मन्त्रपदादिवोरगः ॥२४॥

अन्वय—कथाप्रसंगेन जनैः उदाहृतात् तव अभिधानात् अनुस्मृताखण्डलसूनुविक्रमः नताननः सः दुःसहात् मन्त्रपदात् उरगः इव व्यथते।

संस्कृत व्याख्या—'कथाप्रसंगेन' कथानां गोष्ठीनां प्रसंगेन वचनेन गोष्ठीवार्तासु इत्यर्थः 'जनैः' लोकैः अथवा 'कथाप्रसंगेषु जनैः' कथाप्रसङ्गेषु इनाः श्रेष्ठाः जनाः लोकाः तैः 'उदाहृतात्' 'उच्चारितात् 'तव' भवतः युधिष्ठिरस्य 'अभिधानात्' नाम्नः कथनात् 'अनुस्मृताखण्डलसूनुविक्रमः' अनुस्मृतः स्मृतिं प्राप्तः आखण्डलस्य इन्द्रस्य सूनोः पुत्रस्य अर्जुनस्य इत्यर्थः विक्रमः पराक्रमः येन सः अत एव 'नताननः' नतं नम्रीभूतम् मुखं यस्य सः दुर्योधनः 'दुःसहात्' असह्यात्' मन्त्रपदात्' मन्त्राणां शब्दानां पदात् मन्त्रशब्दप्रयोगादिति भावः 'उरगः' सर्पः इव 'व्यथते' अत्यन्तं पीडितो भवति।

अत्र सर्वाणि पदानि सर्पपक्षेऽपि संगतानि भवन्ति। दुर्योधन इव व्यथते यथा कथाप्रसंगः' विषवैद्यानां कथाप्रसंगः विषवैद्य इत्यर्थः 'जनैः' लोकैः 'उदाहृतात्' उच्चारितात् 'तवाभिधानात्' ताक्ष्यनाम्नः सर्प इव वासुकिनाग सर्प तया अभिधानं नाम्नः उच्चारणं यस्मिन् पदे तस्मात् 'अनुस्मृताखण्डलसूनुविक्रमः' अनुस्मृतः आखण्डलस्य सूनुः अनुजः उपेन्द्रः विष्णुः तस्य विपक्षी गरुडः तस्य क्रमः चरणनिक्षेपः येन सः 'नताननः' अधोमुखः 'उरगः' सर्पः 'दुःसहात्' असह्यात् सर्पत्राणकारणीभूतात् मन्त्रशब्दप्रयोगात् व्यथते पीडितो भवति।

त्वत भीत दुर्योधन कथाप्रसङ्गेषु यदैव तव नामोच्चारण शृणोति तदैव अर्जुनस्य स्मरणात अधोमुख सन तथैव व्यथितो भवति यथा गरुडस्य स्मरणात अधोमुख सर्प भीतो भवति । इति भाव ।

हिन्दी अर्थ—कथाप्रसग मे श्रेष्ठ जनो द्वारा आपके नाम का उच्चारण होने पर इन्द्र के पुत्र अर्जुन के नाम का स्मरण करके सिर को झुकाये हुये वह दुर्योधन उसी प्रकार पीडित है, जिस प्रकार विषवैद्यो मे श्रेष्ठ व्यक्तियों द्वारा तार्क्ष्य और वासुकि सर्पो के नाम से युक्त पदो के उच्चारण करने पर इन्द्र के अनुज उपेन्द्र अर्थात विष्णु के वाहन गरुड के पादविक्षेप को स्मरण करने वाला । अत सिर को झुकाये हुये सर्प असह्य मन्त्रों के प्रयोग से व्यथित होता है ।

भाव—यद्यपि दुर्योधन ने प्रभूत मात्रा मे समृद्धि, धन, बल और धर्म का सचय कर लिया है, तथापि ससार मे सर्वश्रेष्ठ योद्धा अर्जुन के स्मरण करने से ही वह नीचे को मुख करके हृदय मे अत्यधिक पीडित होता है ।

वाच्यपरिवर्तन—कथाप्रसगेन जनै उदाहृतात तव अभिधानाद् अनुस्मृताखण्डलसूनुविक्रमेण नतानेन तेन दु सहात मन्त्रपदात उरगेण इव व्यथ्यते ।

टिप्पणियाँ

कथाप्रसगेन—कथाना प्रसगेन । षष्ठी तत्पुरुष समास । प्र+सञ्ज्+घञ=प्रसङ्ग । कथाप्रसगेन जन —इनाश्चतेजना इनजना । श्रेष्ठ पुरुष । कर्मधारय समास । कथाना प्रसङ्ग कथाप्रङ्गेषु इनजन –कथाप्रङ्गेनजन । सप्तमी तत्पुरुष समास । उदाहृतात—उद्+आ+हृ+क्त=उदाहृत् । पञ्चमी विभक्ति का एक वचन=उदाहृतात के हेतु होने के कारण यहा हेतौ' सूत्र से पञ्चमी विभक्ति हुई । तवाभिधानात—तव अभिधानात् । तुम्हारे नाम का उच्चारण होने से । अथवा तस्च वश्च तयो तार्क्ष्यवासुक्यो अभिधानात् । अभि+धा+ल्युट (अन)=अभिधान । अनुस्मृताखण्डलसूनुविक्रम"—आखण्डलस्य सूनो विक्रम आखण्डलसूनुविक्रम । षष्ठी तत्पुरुष समास । अनुस्मृत —आखण्डलसूनुविक्रम यन स । बहुव्रीहि समास । अनु+स्मृ+क्त=अनुस्मृत । आखण्डलयति भेदयति पर्वतान् स आखण्डल । आ+खण्ड्+डलच=

आखण्डल । सू + नुक् = सून । वि + क्रम + अच = विक्रम । नतानन —नतम आनन यस्य स । बहुव्रीहि समास । उरग — उरसा गच्छति अथ मे उरस + गम + ड = उरग ।

अलकार—उपमा ।

प्रस्तुत गद्य मे उरग उपमान दुर्योधन उपमेय, आखण्डलसूनु का स्मरण करना सिर झुका लेना व्यथित होना ग्लानि साधारण धम और इव उपमा वाचक शब्द है । उपमा के चारो अङ्गो के उपस्थित रहने से यहाँ पूर्णोपमा है । सप और दुर्योधन के पक्षो मे एक ही पद के अलग अलग अथ होने स यहा श्लेष अलकार भी है । अत यह उपमा श्लेष से अनुप्राणित है ।

छन्द—वशस्थ ।

विशेष कथन—१ प्रस्तुत श्लोक द्वारा किरात युधिष्ठिर को यह स्मरण दिलाना चाहता है कि दुर्योधन की समृद्धि और पराक्रम से आपको घबराने की आवश्यकता नही है । ससार का सर्वश्रेष्ठ योद्धा अर्जुन आपका छोटा भाई और सहायक है । उसके पराक्रम से आप दुर्योधन को अवश्य ही जीत लेंगे ।

२ पाण्डव देवपुत्र कहे जाते थ । वे विभिन्न देवताओ के आशीर्वाद से उत्पन्न हुये थे । युधिष्ठिर को धम पुत्र, भीम को वायु पुत्र, अर्जुन को इन्द्र पुत्र और नकुल तथा सहदेव को अश्विनीकुमारो का पुत्र कहा जाता था ।

३ भारतीय पौराणिक कथा साहित्य के अनुसार सर्पो की माता और गरुड की माता विनता मे परस्पर वैर भाव के कारण सर्पो और गरुड मे वैर भाव उत्पन्न हो गया था । भगवान विष्णु का वाहन बनकर गरुड ने परम पराक्रम प्राप्त किया । सप उसके पराक्रम से सदा भयभीत रहते थे ।

घण्टापथ टीका—कथेति । कथाप्रसङ्गेन गोष्ठीवचनेन जनै । अ यत्र कथा प्रसङ्गेन विषवद्येन । 'कथाप्रसगो वार्तायां विषवद्येऽपि वाच्यवत्' इति विश्व । एकवचनस्यातन्त्रत्वाज्जनविशेषणम । उदाहृतादुच्चारितात्तवाभिधानान्नामधे यात्स्मारकाद्धेतो । 'हेतौ' इति पञ्चमी । 'आख्याह्वे अभिधान च नामधेय च नाम' च इत्यमर । अ यत्र तवाभिधानात् । नामैकदेशग्रहणे नाममात्र ग्रहणम्' इति न्यायात्तश्च वश्च तवौ तार्क्ष्यवासुकी तयोरभिधान यस्मिन्पदे

तस्मात । यद्वा कथाप्रसङ्गे इनाश्च ते जनाश्च इत्येक पदम । अनुस्मृतारवण्डल-सूनुविक्रम स्मृतःजु नपराक्रम सुहृ सहृादतिहु सहृ म अपत्य म त्रशब्दात्स्मा रकाद्भीतो । आखण्डलसूनुरि द्रात्मज । 'उपेन्द्रो नित्यणरिति यावत' । सूनु पुत्रऽनुजे रवौ' इति विश्व । तस्य वि पक्षी । गरुड इत्यर्थ । यस्य क्रम पादविक्षेप । सोऽनुस्म ।। येन स तथोक्त, स्मृतगरुडमहिमा । उरग इव नता न सन । व्यथते दु खायते । पीडा बाधा व्यथा दु खम' इत्यमर । अत्युत्कट भयदोषादिविकारा दुर्वार इति भाव । 'सर्वतो जयमन्विच्छेत्पुत्रादिच्छेत्पराजयम' इति यायात्जु नोत्कर्षकथन युधिष्ठिरस्य भूषणमिति सर्वमवदातम ।२ ॥

प्रकरण—दुर्योधन का पूरा समाचार सुनाकर, उसकी समृद्धि, बल, नीति आदि का वर्णन करके और यह बता कर कि दुर्योधन आपसे ही भय कर रहा है, वनचर बताता है कि वह आपके प्रति कपट का आचरण करना चाहता है, इस कारण आपको उसके प्रतिकार का उपाय करना चाहिये—

तदाशु कर्तुं त्वयि जिह्ममुद्यते
विधीयतां तत्र विधेयमुत्तरम्।
परप्रणीतानि वचांसि चिन्वतां
प्रवृत्तिसाराः खलु मादृशां गिरः ॥२५॥

अन्वय—तत त्वयि जिह्मम् कर्तुम् उद्यत तत्र आशु विधेयम् उत्तरम् विधीयताम् । परप्रणीतानि वचांसि चिन्वताम् खलु मादृशाम् गिर प्रवृत्तिसारा ।

संस्कृत व्याख्या— तत' तस्मात दुर्योधन धनबलसम्पन्नोऽपि त्वत्त भीतो ऽस्ति तस्माद्धेतो त्वयि युधिष्ठिरस्य विषये जिह्मम्' कपटाचरण कर्तु' विधातु हन्तुमित्यर्थ उद्यते' तत्परे 'तत्र' तस्मिन् दुर्योधनस्य विषये 'आशु' शीघ्र विधेय' कर्त्त योग्यम् 'उत्तर' प्रतीकार 'विधीयता' क्रियताम । खलु' निश्चयेन परप्रणीतानि' पर अन्यै शत्रुभिरिति भाव प्रणीतानि कथितानि

'वचांसि' कथानानि 'चिन्वता सगृह्णता गवेषयतामित्यर्थ 'मादृशा' मद्विधाना गुप्तचराणा गिर' वाणय मदेशरूपा कथिता वाच 'प्रवृत्तिसारा' प्रवृत्ति वता तमात्रकथन सार तत्त्व यासा तथाभूता सन्ति। अहं शत्रूणा रहस्याना प्रयत्नाना च गवेषक सन् वार्तामात्रमेव कथयितु शक्नोमि, उपायस्तु भवदा वीन एव इति भाव ।

हिन्दी अर्थ—इसलिये आपके प्रति कपट का आचरण करने के लिये उद्यत हुये उस दुर्योधन के प्रति आप करने योग्य कोई प्रतिकार कीजिये। शत्रुओ द्वारा कहे गये वचनो का सग्रह करने वाले हम जैसे चरो की वाणिया तो केवल वृत्तान्तो का ही वर्णन कर सकती हैं।

भाव—आपसे और अर्जुन के पराक्रम से भयभीत हुआ वह दुर्योधन गुप्त रूप से आप सबको मरवा देने के लिय उद्यत हो रहा है। अत आपको शीघ्र ही इसका प्रतीकार करना चाहिये। परन्तु हम गुप्तचर तो शत्रुओ द्वारा किये जाने वाले प्रयोगो को जान कर आपको बता ही सकते हैं। उनका प्रतीकार करना आपके ही अधिकार मे है।

वाच्यपरिवर्तन—तत् त्वयि जिह्मम कर्तुम उद्यते तत्र आशु विधेय उत्तर विधेय। खलु परप्रणीतानि वचांसि चिन्वता मादृशा गीर्भि प्रवृत्ति साराभि भूयते।

टिप्पणियाँ

कर्तुम—कृ+तुमुन। **जिह्मम**—हा+मन्=जिह्म। **उद्यते**—उद+ यम+क्त=उद्यत। सप्तमी विभक्ति का एकवचन=उद्यते। **विधीयताम**=वि उपसर्ग पूर्वक आत्मनेपदी धा धातु लोट लकार प्रथम पुरुष का एकवचन। **तत्र**=तद शब्द सप्तमी विभक्ति के अर्थ त्रल प्रत्यय। तद+त्रल्=तत्र। **विधेयम्**=वि+धा+यत=विधेय। **उत्तरम**—उद्+तृ+अप=उत्तर। **परप्रणीतानि**—परै प्रणीतानि। तृतीया तत्पुरुष समास। प्र+नी+ क्त=प्रणीत। **वचांसि**—नपुसकलिंग वचस् शब्द द्वितीया का बहुवचन। **चिन्वताम**—चि+शतृ=चिन्वत। षष्ठी विभक्ति का बहुवचन=चिन्व- ताम। **प्रवृत्तिसारा**—प्रवृत्ति एव सार यासा ता। बहुव्रीहि—समास प्र+ वृत्+क्तिन=प्रवृत्ति। सृ+घञ=सार। **मादृशाम्**—अहम इव दृश्यते

अथ मे अस्मद्+दृश+क्विप=माद्दश। षष्ठी विभक्ति का बहुवचन= मादृशाम। अलकार—अर्था तर यास।

आपको मैंने दुर्योधन वी अभिसधि बता दी है, अब आपको इसका प्रतिकार करना चाहिय, इस विशेष का समथन दूत केवल समाचार लाकर दे सकते है इस सामा य से किया है। अत सामा य द्वारा विशेष का समर्थन किया जाने के कारण यहाँ अर्थान्तर यास अलकार है।

छ द—वशस्थ।

विशेष कथन—गुप्तचर राजा की आख होते है। पर तु वे केवल समाचार ही लाकर दे सकते है। उन समाचारो को जान कर राजा को शीघ्र ही कर्त्तव्य का निर्धारण कर लेना चाहिये। देरी करने से काय की हानि होती है।

घण्टापथ टीका—तदिति। तत्तस्मात्त्वयि जिह्म कपट कर्त्तु मुद्यते। स्था जिघासावित्यथ। तत्र तस्मि दुर्योधन विधेय कर्त्त यमुत्तर प्रतिक्रियाऽऽशु विधीयता क्रियताम्। ननु कर्त्तव्यमपि त्वयैवोच्यतामिति चेन्नाह—परेति। परप्रणीतानि परोक्तानि वचासि चि वता गवेषयता मादृशाम्। वार्त्ताहारिणामित्यथ। गिर प्रवत्तिसारा वार्तामात्रसारा खलु। 'वार्त्ता प्रवृत्तिवृ त्तान्त' इत्यमर। वार्तामात्रवादिनो वय न तु कर्त्तव्यार्थोपदेशसमर्था। अतस्त्वयैव निर्धार्य कार्यमिति भाव। सामा येन विशेषसमथनादर्थान्तरन्यास॥२५॥

प्रकरण—वनेचर ने दुर्योधन के क्रियाकलापो और अभिसधियो को बता कर युधिष्ठिर से कहा कि आपको इसका शीघ्र प्रतीकार करना चाहिये। इन समाचारो को सुना कर और पारितोषिक प्राप्त करके वह चला-जाता है और युधिष्ठिर द्रौपदी के कक्ष मे जाते है—

इतीरयित्वा गिरमात्तसत्क्रिये
गतेऽथ पत्यौ वनसन्निवासिनाम्।
प्रविश्य कृष्णासदन महीभुजा
तदाचचक्षेऽनुजसनिधौ वच॥२६॥

अन्वय—इति गिरम ईरयित्वा अथ आत्तसत्क्रिये वनसंनिवासिनाम पत्यौ गते महीभुजा कृष्णासदनम् प्रविश्य तद् वच अनुजसंनिधौ आचचक्षे ।

संस्कृत व्याख्या— इति' एव प्रकारेण 'गिर' वाणी कुरुदेशस्य समाचारम 'ईरयित्वा' 'कथयित्वा' 'अथ' तदन तरम 'आत्तसत्क्रिये' आत्ता गृहीतगता सत्क्रिया सत्कार पारितोषिकादिक येन तस्मिन 'वनसं निवासिना वनेषु अरण्येषु संनिवसंति सुष्ठु निवास कुर्वन्ति इति तेषां वनेचराणामिति भाव 'पत्यौ' अधिप 'गते प्रस्थिते सति 'महीभुजा' राज्ञा युधिष्ठिरेण 'कृष्णासदन' कृष्णाया द्रौपद्या सदन गृह 'प्रविश्य' प्रवेश कृत्वा तद् वनेचरणोक्त 'वच ' वाक्यम 'अनुजसंनिधौ' अनुजाना भीमार्जुननकुलसहदेवाना संनिधौ समीपे सम्मुखमिति भाव आचचक्षे' आख्यातम ।

हिन्दी अर्थ—इस प्रकार से वाणी को कह कर, इसके बाद युधिष्ठिर से पारितोषिक आदि को प्राप्त करके उस वनेचरो के नायक के चले जाने पर राजा युधिष्ठिर ने द्रौपदी के आवास मे जाकर उसकी वाणी को भीम, अर्जुन, नकुल और सहदेव इन छोटे भाइयो के समक्ष कहा ।

भाव—इस प्रकार उस वनेचर ने हस्तिनापुर मे जाने गये सारे समाचारो को युधिष्ठिर को सुना दिया । युधिष्ठिर ने पारितोषिक आदि देकर उसका सत्कार किया । इसके बाद वह वनेचर वहाँ से चला गया । अब युधिष्ठिर द्रौपदी के पास गये, जहाँ उनके चारो छोटे भाई भी उपस्थित थे । उसका सारा वृत्तान्त उनके सामने ही सुनाया ।

वाच्यपरिवर्तन—इति गिरम ईरयित्वा अथ आत्तसत्क्रिये वनसंनिवासिना पत्यौ गते महीभुक कृष्णासदन प्रविश्य अनुजसंनिधौ तद् वच आचचक्ष ।

टिप्पणियाँ

ईरयित्वा – ईर + णिच + क्त्वा । गिरम्—गिर । द्वितीय विभक्ति का एकवचन=गिरम् आत्तसत्क्रिय —आत्ता सत्क्रिया येन स । बहुव्रीहि समास । आ + दा + क्त= आत्त । सत् + कृ + श + (रिङ आदेश) + टाप्=

सत्क्रिया। गते—गम+क्त=गत। सप्तमी विभक्ति का एकवचन=गते। पत्यौ—पाति रक्षति अर्थ मे पा+डति+पति। सप्तमी विभक्ति का एकवचन=पत्यौ। वनसन्निवासिनाम—वने सन्निवसन्ति इति तेषाम अर्थ मे वन+सम+नि+वस+णिनि=वनसन्निवासिन। षष्ठी विभक्ति का बहुवचन=वनसन्निवासिनाम। प्रविश्य—प्र+विश+क्त्वा (ल्यप)। कृष्णासदनम—कृष्णाया सदनम। षष्ठी तत्पुरुष समास। कृष+नक+अच+टाप=कृष्णा। सद्+ल्युट (अन)=सदन। महीभुजा—मही भुनक्ति अर्थ मे मही+भुज+क्विप=महीभुक। तृतीया विभक्ति का एकवचन=महीभुजा। आचचक्षे—आ+चक्ष धातु से आत्मनेपद कर्मकारक मे लिट लकार प्रथम पुरुष का एकवचन। अनुजसंनिधौ—अनुजाना सन्निधौ। षष्ठी तत्पुरुष समास। अनुजात अर्थ मे अनु+जन+ड=अनुज। सम्+नि+धा+कि=सन्निधि। वच—वच+असुन्=वच।

छन्द—वशस्थ।

विशेष कथन राजा को चाहिये कि कार्य के पूरा कर लेने पर सेवको को पारितोषिक आदि देकर उनका उचित सत्कार करे। इससे वे सन्तुष्ट होकर कार्यों की ओर भी अच्छी प्रकार से करने के लिये उत्साहित होगे।

घण्टापथ टीका—इतीति। वनसनिवासिना पत्यौ वनेचराधिप इति गिरमीरयित्वोक्त्वाऽऽत्तसत्क्रिये गृहीतपारितोषिके गते सति। 'तुष्टिदानमेव चाराणा हि वेतनम। ते हि तल्लोभात स्वामिकार्येष्वतीव त्वरयन्ते' इति नीतिवाक्यामृते। अथ महीभुजा राज्ञा कृष्णासदन द्रौपदीभवन प्रविश्यानुज सन्निधौ तद्वनेचरोक्त वचो वाक्यमाचचक्षे आख्यातम्। अथवा कृष्णेति पदच्छेद। सदन प्रविश्यानुजसन्निधौ तद्वच कृष्णाऽऽचचक्षे आख्याता। चक्षिडो दुहादेर्द्विकर्मकत्वादप्रधाने कर्मणि लिट ॥२६॥

...

प्रकरण—गुप्तचर द्वारा बताये गये कुरुदेश के वृत्तान्त को युधिष्ठिर ने द्रौपदी के कक्ष मे जाकर छोटे भाईयो के सामने सुनाया। उस वृत्तान्त को सुनकर द्रौपदी अपने रोष को न रोक सकी और क्रोध को उद्दीप्त करने वाले वाक्यो को कहने लगी—

निशम्य सिद्धिं द्विषतामपाकृती-
स्ततस्ततस्त्या विनियन्तुमक्षमा ।
नृपस्य मन्युव्यवसायदीपिनी-
रुदाजहार द्रुपदात्मजा गिर ॥२७॥

अन्वय—तत द्विषताम् सिद्धिम् निशम्य ततस्त्या अपाकृती विनियन्तुम् अक्षमा द्रुपदात्मजा नृपस्य मन्युव्यवसायदीपिनी गिर उदाजहार ।

संस्कृत व्याख्या—'तत' तदनन्तर 'द्विषता' शत्रूणा दुर्योधनादिना 'सिद्धि' सफलता 'निशम्य' श्रुत्वा 'ततस्त्या' तेभ्य शत्रुभ्य प्राप्ता 'अपाकृती' अपकारान् विनियन्तु निरोद्धुम 'अक्षमा' असमर्था सती 'द्रुपदात्मजा' द्रुपदस्य नाम्न राज्ञ पुत्री द्रौपदी 'नृपस्य' राज्ञ युधिष्ठिरस्य 'मन्युव्यवसायदीपिनी' मन्यो कोपस्य व्यवसायस्य उद्योगस्य च दीपिनी सवर्धिका 'गिर' वाच 'उदाजहार' जगाद ।

हिन्दी अर्थ—इसके बाद दुर्योधन आदि शत्रुओ की सफलता के समाचार को सुन कर उनसे प्राप्त हुये अपकारो अर्थात दुखों को रोकने मे असमर्थ होती हुई द्रुपद की पुत्री (द्रौपदी) ने राजा युधिष्ठिर के क्रोध और उद्योग को उद्दीप्त करने वाली वाणियो को कहा ।

भाव—शत्रुओ की सफलता के समाचारो ने द्रौपदी के क्रोध की अग्नि को भडका दिया । उनसे पाये गये अपकारो को और दुखो को याद करके वह अपने को रोक नही सकी । शान्त स्वभाव के युधिष्ठिर के क्रोध को भडकाने के लिये और उनको उद्योगशील बनाने के लिये वह इस प्रकार से कहने लगी ।

वाच्यपरिवर्तन—तत द्विषता सिद्धि निशम्य ततस्त्या अपाकृतय विनियन्तुम् अक्षमया द्रुपदात्मजया नृपस्य मन्युव्यवसायदीपिन्य गिर उदाहृता ।

टिप्पणियाँ

निशम्य—नि+शम+क्त्वा (ल्यप्) । सिद्धिम—सिध्+क्तिन । द्विषत म—द्विष+शतृ=द्विषत । षष्ठी विभक्ति का बहुवचन=द्विषतां अपाकृती । ततस्त्या—तस्मात इस पञ्चमी विभक्ति के अर्थ मे तद्+तसिल्=ततस् ।

तस्माद् आगता इस अर्थ में अव्ययात्यप सूत्र से त्यप प्रत्यय। ततस + त्यप + टाप = ततस्त्या। द्वितीया विभक्ति के बहुवचन में = ततस्त्याः। **विनियन्तुम**— वि + नि + यम + तुमुन्। **अक्षमा**—न क्षमा अक्षमा। नञ तत्पुरुष समास। क्षम् + अच + टाप = क्षमा। **मन्युव्यवसायदीपिनी**—मन्युश्च व्यवसायश्च मन्युव्यवसायौ। द्वन्द्व समास। मन्युव्यवसायौ दीपिनी मन्युव्यवसायदीपिनी। षष्ठी तत्पुरुष समास। दीप + णिनि + ङीप = दीपिनी। उदाजहार—उत् + हृ धातु से लिट लकार प्रथम पुरुष का एकवचन। द्रुपदात्मजा—द्रुपदस्य आत्मजा। षष्ठी तत्पुरुष समास। आत्मनि जाता अर्थ में आत्मन + जन + ड + टाप = आत्मजा।

छन्द—वंशस्थ।

विशेष कथन—दुर्योधन द्वारा किये जाने वाले अपमानों की व्यथाओं को सबसे अधिक द्रौपदी को ही सहन करना पड़ा था। वह एक प्रतापी राजा की पुत्री थी और प्रतापी पाण्डवों की पत्नी थी। उसको राज्य सभा में बुलाकर दुर्योधन ने वस्त्रहीन करने का प्रयत्न किया था। द्यूत में छल से पाण्डवों के हारे जाने पर अब वह अपने पतियों के साथ वनों में दर दर भटक रही थी। इसलिए उसका सबसे अधिक दुःखी और क्रोधित होना स्वाभाविक ही था।

घण्टापथ टीका—निशम्येति। अथ द्रुपदात्मजा द्रौपदी द्विषतां सिद्धिं वद्धिरूपां निशम्य ततस्तदनन्तरम। ततो विषद्भ्य आगतास्ततस्त्याः। 'अव्ययात्यप' इति त्यप्। अराक्तीर्विकारान् विनियन्तुम निरोद्धुमक्षमा सती नृपस्य युधिष्ठिरस्य मन्युव्यवसाययोः क्रोधोद्योगयोर्दीपिनी मर्मभिर्गिरो वाचया उदाजहार। जगादेत्यर्थ ॥२७॥

प्रकरण—दुर्योधन की सफलताओं के समाचारों को सुन कर द्रौपदी का क्रोध भड़क उठा। युधिष्ठिर के क्रोध को उद्योग को उद्दीप्त करने के लिये उसने इस प्रकार के वाक्य कहे—

भवादृशेषु प्रमदाजनोदित
भवत्यधिक्षेप इवानुशासनम्।

तथाऽपि वक्तुं व्यवसाययन्ति मां
निरस्तनारीसमया दुराधयः ॥२८॥

अन्वय—भवादृशेषु प्रमदाजनोदितम् अनुशासनम् अधिक्षेप इव भवति। तथापि निरस्तनारीसमया दुराधयः माम् वक्तुम् व्यवसाययन्ति।

संस्कृत व्याख्या— 'भवादृशेषु' भवान् इव दृश्यमानेषु भवद्विधेषु इत्यर्थः 'प्रमदाजनोदितं प्रमदाजनेन स्त्रीजनेन उदितं कथितम् अनुशासनम्' उपदेशः 'अधिक्षेप इव' तिरस्कार इव 'भवति' जायते। 'तथापि' मया एतस्य उपदेष्टुम् अनुचितत्वे अपि 'निरस्तनारीसमया' निरस्तः समापितः नारीणां स्त्रीणां समयः शालीनतारूपः सदाचारः यैः ते दुराधयः दुष्टाः मनोव्यथाः मां द्रौपदीं 'वक्तुं' कथयितुं 'व्यवसाययन्ति' उद्योगशालिनीं कुर्वन्ति प्रेरयन्ति इत्यर्थः।

हिन्दी अर्थ— आप जैसे व्यक्तियों को मुझ जैसी स्त्रियों द्वारा उपदेश देना तिरस्कार के समान ही है तो भी स्त्रियों के शालीनता रूप सदाचार समाप्त करने वाली दुष्ट व्यथायें मुझको बोलने के लिये प्रेरित कर रही हैं।

भाव – यद्यपि आप जैसे महान व्यक्तियों को मुझ जैसी तुच्छ स्त्री का उपदेश उचित नहीं है तथापि मेरे मन में जो इतनी अधिक पीड़ा है, वही मुझे इस प्रकार बोलने के लिये बाध्य कर रही है।

वाच्यपरिवर्तन— भवादृशेषु प्रमदाजनोदितेन अनुशासनेन अधिक्षेपेण इव भूयते। तथापि निरस्तनारीसमयैः दुराधिभिः अहं वक्तुं व्यवसायिता अस्मि।

टिप्पणियाँ

भवादृशेषु —भवान् इव दृश्यमानेषु अर्थ में भवत् + दृश + क्विन् = भवादृश सप्तमी विभक्ति का बहुवचन —भवादृशेषु। प्रमदाजनोदितम् —प्रमदाजनेन उदितम्। तृतीया तत्पुरुष समास। प्रमदा चासौ जनः प्रमदाजनः। कर्मधारय समास। प्रकृष्टः मनः यस्याः सा अर्थ में प्र + मद् + अच् + टाप् = प्रमदा। वद् + क्त = उदित। अधिक्षेप — अधि + क्षिप + घञ् + अधिक्षेप।

अनुशासनम—अनु + शास + ल्युट (अन)। **तथा**—तेन प्रकारेण अथ म प्रकारवचने थाल सूत्र से थाल प्रत्यय। तद + थाल = तथा। **वक्तुम**—वच + तुमुन्। **व्यवसाययति**—वि और अव उपसग पूवक सो धातु प्रेरणा अथ मे णिच प्रत्यय होकर व्यवसायय। लट लकार प्रथम पुरुष का बहुवचन + व्यवसायति। **माम**—अह वक्तु व्यवस्यामि, णयन्तावस्था म अह इस कर्ता की दुराधय वक्तु व्यवसाययति माम इस ण्य तावस्था मे कम सज्ञा हो जाती है। इसलिये माम मे द्वितीया विभक्ति हुई। **निरस्तनारीसमया**—नारीणा समय नारीसमय। षष्ठी तत्पुरुष समास। निरस्त नारीसमय य ते निरस्तनारी समया। बहुव्रीहि समास। निर + अस + क्त = निरस्त। नृ नरत्य वा धर्या अथ मे न अथवा नर शब्द से अज + ङीप + नारी। **दुराधय**—दुष्टा आधय अथ मे दुर + आ + धा + कि = दुराधि। प्रथमा विभक्ति का बहुवचन = दुराधय।

अलकार काव्यलिङ्ग।

निरस्तनारीसमया दुराधय दुष्ट मनोव्यथाये नारियो की शालीनता को समाप्त कर देती है, इन पदो के अर्थो को मा वक्तु व्यवसाययति मुझे उपदेश देने के लिये प्रेरित कर रही हैं इस वाक्य के हेतु क रूप म प्रस्तुत किया गया है। इसलिये यहा काव्यलिङ्ग अलकार है।

अथवा समथनीयस्यायस्य काव्यलिङ्ग समथनम' इस लक्षण के अनुसार द्रौपदी के अत्यधिक मनोव्यथाओ से युक्त होने के द्वारा उनके द्वारा उपदश देने का समथन किया जाने से काव्यलिङ्ग अलकार होता है।

छन्द—वशस्थ।

विशेष कथन—सामान्यत स्त्रियो म शालीनता होती है और वे पति के प्रति धृष्टता का आचरण नही करती। परन्तु अत्यधिक पीडा पाने पर उनकी शालीनता समाप्त हो जाती है और वे पति का तिरस्कार करने के लिये उद्यत हो जाती है।

घण्टापथ टीका— भवादशेष्विति। भवान्शा भवद्विधा। पण्डिता इत्यथ। तेषु विषये। त्यदादिषु 'इत्यादिना कञ। आ सवनाम्न 'इत्याकारादेश।

प्रमदाजनोदितम् स्त्रीजनोक्तम । वदे क्त । 'वचिस्पपि'—इत्यादिना सम्प्रसारणम । अनुशासन नियोगवचनमधिक्षेपस्तिरस्कार इव भवति । अतो न युक्त वक्तुमित्यथ । तथाऽपि वक्तुमनुचितत्वेऽपि निरस्तनारोसमयास्त्य जितशा लीनताऽऽपस्त्रीसमाचारा । 'समया शपथाचारकालसिद्धा तसविद ' इत्यमर । दुराधय समयोल्लङ्घनहेतुत्वाद् दुष्टा मनोव्यथा । 'प स्याधिमानिसी व्यथा' इत्यमर । मा वक्तु व्यवसाययति प्रेरयति । न किंचिदयुक्त दु खिनामिति भाव ॥२८॥

प्रकरण—दुर्योधन की सफलता के समाचारो को सुन कर भडकी हुई द्रौपदी युधिष्ठिर के क्रोध को उद्दीप्त करने के लिये उसे उलाहना देती हुई कहती है कि इस प्रकार मैं तुमको उपदेश इसलिये दे रही हूँ, क्योंकि मुझ पर पडी हुई विपत्तियो ने मेरी शालीनता को समाप्त कर दिया है । वह कहती है कि इस पृथिवी के स्वामी तुम्हारे ही पूवज थ, जिसको तुमने अपने ही दोष से गँवा दिया ।

अखण्डमाखण्डलतुल्यधामभि-
चिरं धृता भूपतिभि स्ववंशजै ।
त्वयाऽऽत्महस्तेन मही मदच्युता
मतङ्गजेन स्रगिवापवर्जिता ॥२९॥

अ वय—आखण्डलतुल्यधामभि स्ववशजै भूपतिभि चिरम् अखण्डम् धृता मही त्वया मदच्युता मतङ्गजेन स्रग इव आत्महस्तेन अपवर्जिता ।

संस्कृत व्याख्या—'आखण्डलतुल्यधामभि ' आखण्डलेन इन्द्रेण तुल्य समान धाम तेज येषा तै 'तेजसा इ द्रतुल्य 'स्ववशजै ' स्वे वशे कुले जातै उत्पन्न पूवज 'भूपतिभि ' महीपालै चिर' दीघकालपयन्तम 'अखण्डम' अविच्छिन्न धृता' अवलम्बिता 'मही' पृथिवी त्वया युधिष्ठिरेण 'मदच्युता' मद दानजल च्योतयति स्रावयति इति तेन दानजलस्राविणा 'मतङ्गजेन'

हस्तिना 'आत्महस्तेन' स्वशुण्डादण्डेन 'स्रग' माला इव 'आत्महस्तेन' स्वकरेण स्वदोषेण इति भाव 'अपवर्जिता' परिtयक्ता।

हिन्दी अर्थ—इन्द्र के समान तेजस्वी अपने कुल में उत्पन्न पूर्वज राजाओं द्वारा चिरकाल तक अविच्छिन्न रूप से धारण की गई पृथिवी को आपने अपने हाथ से इसी प्रकार त्याग दिया, जिस प्रकार मदजल को बहाने वाला हाथी अपनी सूंड से माला को छोड देता है।

भाव—इस पृथिवी के स्वामी आपके पूर्वज ही थे। चिरकाल तक अविच्छिन्न रूप से इसका शासन करते रहे। इसलिये धर्म के अनुसार आप ही इस राज्य के स्वामी थे। परन्तु आपके राज्य के छिन जाने का कारण शत्रुओं का बलशाली होना नहीं था। आपने अपनी ही भीरुता और आलस्य से इस राज्य का परित्याग कर दिया है। यदि आप उद्योगशील और वीर होते तो आपकी यह दशा कभी नहीं होती।

वाच्यपरिवर्तन—आखण्डलतुल्यधामान स्ववंशजा भूपतय चिरम् अखण्ड मह्ी धतवन्त। त्वं मदच्युत मतङ्गज स्रजम् इव आत्महस्तेन अपवर्जितवान्।

टिप्पणियाँ

अखण्डम्—न अस्ति खण्ड यस्मिन तत् अखण्डम्। क्रियाविशेषण है। **आखण्डलतुल्यधामभि**—आखण्डलेन तुल्य धाम येषां ते। बहुव्रीहि समास। आ+खण्ड+डलच=आखण्डल। तुलया सम्मित अर्थ मे तुला+यत=तुल्य। दधाति अर्थ म धा+मनिन्=धामन। **भूपतिभि**—भुव पति भूपति। षष्ठी तत्पुरुष समास। तृतीया विभक्ति का बहुवचन=भूपतिभि। **स्ववंशजै**—स्वस्य वंश स्ववंश। षष्ठी तत्पुरुष समास। स्ववंशे जात स्ववंशज। सप्तमी तत्पुरुष समास। स्ववंश+जन्+ड=स्ववंशज। तृतीया विभक्ति का बहुवचन=स्ववंशजै। **त्वया**—युष्मद् शब्द तृतीया विभक्ति का एकवचन। कर्तृ कारक मे तृतीया विभक्ति हुई। **आत्महस्तेन**—आत्मन हस्तेन, षष्ठी तत्पुरुष समास। करण कारक मे तृतीया विभक्ति हुई। **मही**—मह+अच+ङीप्। **मदच्युत**—मद च्यावयति अर्थ मे मद+च्यु+क्विप्=मदच्युत। तृतीया का एक वचन=मदच्युता। **मतङ्गजेन**—मतङ्गे जात अर्थ

म मदाद्गं + गम + ड—मतङ्ग । तृतीया विभक्ति मे एक वचन = मतङ्गेन ।
स्रक— सृज + क्विन - स्रज । पर्वर्जित ।—गप + वृज + णिच + टाप ।

लङ्कार — उपमा । इस पद्य म दो उपमायें हैं

१ इन्द्र के समान तेजस्वी राजाओं ने, यहा आखण्डल उपमान भूपति उपमेय तेजस्वी होना साधारण धर्म और तुल्य उपमा वाचक शब्द है । यह पूर्णोपमा है ।

जिस प्रकार हाथी अपने सूड से अपनी माला को छोड देता है, उसी प्रकार आपने अपने हाथ से पृथ्वी का परित्याग कर दिया है । इस वाक्य मे मतङ्गज उपमान और युधिष्ठिर उपमेय, सूड उपमान और हाथ उपमेय, माला उपमान और पृथिवी उपमेय है । छोड देना साधारण धर्म है और इव उपमा वाचक शब्द है । इस प्रकार उपमा के चारो अगो के होने से यह पूर्णोपमा है ।

छन्द— वंशस्थ ।

विशेष कथन—प्राय मनुष्य अपने ही दोषो के कारण दुःख पाते हैं ।

घण्टापथ टीका—अखण्डमिति । आखण्डलतुल्यधामभिरिन्द्रतुल्यप्रभावै । स्ववंशजैर्भूपतिभिरनादिभिश्चिरमखण्डमविच्छिन्न धृता मही त्वया । मदं च्योततीति मदच्युत् । क्विप् । तेन मदस्राविणा मतङ्गजेन स्रगिवात्मदस्तेन स्वकरेण स्वचापरीत्यर्थ । अपवर्जिता परिहृता त्यक्ता । स्वदोषादेवायमनर्थागम इत्यर्थ ॥२९॥

प्रकरण— दुर्योधन की सफलता के समाचारो को सुन कर क्रोधित हुई द्रौपदी युधिष्ठिर से कह रही है कि आपने अपने ही दोष से धर्म से प्राप्त राज्य का परित्याग किया है । अब वह कहती है कि कुटिल व्यक्तियो के प्रति कूटनीति का प्रयोग ही उचित होता है—

व्रजन्ति ते मूढधिय पराभवं
भवन्ति मायाविषु ये न मायिन ।

प्रविश्य हि घ्नन्ति शठास्तथा विधा-
नसंवृताङ्गान्निशिता इवेषव ॥३०॥

अन्वय—ये मायाविषु मायिनः न भवन्ति गूढधियः ते पराभवं व्रजन्ति हि शठाः निशिताः इषवः इव तथा विधान् असंवृताङ्गान् प्रविश्य घ्नन्ति।

संस्कृत व्याख्या—ये जना 'मायाविषु' कपटाचरणेषु मायिनः कपटाचरणाः 'न भवन्ति' न सम्पद्यन्ते, कुटिलेषु कूटनीतिं न आचरन्ति इत्यर्थः 'मूढधियः' मूढा मन्दा धी बुद्धिः येषां ते मनुष्याः 'पराभवं' पराजयं 'व्रजन्ति' गच्छन्ति पराजिता भवन्ति इत्यर्थः। हि निश्चयेन शठा धूर्ता 'निशिता' तीक्ष्णा इषवः' शरा इव तथाविधान्' तादृशान् सरलस्वभावान् असंवृताङ्गान् असंवृतानि अनाच्छादितानि अङ्गानि शरीरावयवानि येषां तान् अथवा असंवृतानि अरक्षितानि अङ्गानि सप्त राज्याङ्गानि राजा मन्त्री राष्ट्र-सेना-दुर्ग-कोष-मित्रेति सप्त राज्याङ्गानि येषां तान् प्रविश्य प्रवेशं कृत्वा घ्नन्ति विनाशयन्ति। यथा कुटिला इषवः अनाच्छादिताङ्गान् जनान् प्रविश्य घ्नन्ति तथैव कुटिला जना सरलहृदयान् अरक्षिताङ्गान् राज्ञः प्रविश्य घ्नन्ति। कुटिलेषु आर्जवं न उचितम् इति भावः।

हिन्दी अर्थ—जो कपट करने वाले व्यक्तियों के प्रति कपट का आचरण करने वाले नहीं होते वे मन्द बुद्धि वाले मनुष्य पराजय को प्राप्त होते हैं। निश्चय ही धूर्त मनुष्य उस प्रकार के सरल हृदय वाले और अपने राज्याङ्गों की रक्षा न करते हुये राजाओं में घुस कर उनका उसी प्रकार विनाश करते हैं, जिस प्रकार तीक्ष्ण बाण कवच आदि से न ढके हुये अङ्गों में घुस कर उनका विनाश कर देते हैं।

भाव—कपट का आचरण करने वाले व्यक्तियों के प्रति कपट का आचरण करना उचित होता है। कपटी व्यक्तियों के प्रति इस प्रकार का व्यवहार न करने से निश्चित रूप से पराजय मिलती है। दुर्योधन ने कपट का व्यवहार करके आपका सारा राज्य छीन लिया है। आप कूटनीति का प्रयोग करके ही बदला ले सकते हैं।

वाच्यपरिवर्तन—य मायाविपु मायिभि न भूयते तै मूढधीभि पराभव व्रज्यते । हि शठ निशित इशुभि इव तथा विधा असवताङ्गा प्रविश्य हृ य ते ।

टिप्पणियाँ

मूढधिय—मूढा धी येषा ते । बहुव्रीहि समास । मुह + क्त=मूढ । पराभवम—परा+भू+अप । मायाविषु—माया अस्य अस्ति अर्थ मे माया शब्द से 'अस्मायामेधास्रजो विनि' सूत्र से विनि प्रत्यय, माया+विनि= मायाविन । सप्तमी विभक्ति का बहुवचन=मायाविपु । मायिन —मायिन श०द का प्रथमा विभक्ति का बहुवचन=मायिन । प्रविश्य—प्र+विश+ क्त्वा (ल्यप्) घ्नन्ति – हन् धातु लट लकार, प्रथम पुरुष का बहुवचन । असवताङ्गान—असवतानि अङ्गानि येषा ते । बहुव्रीहि समास । सम+वृ+ क्त=सवत । न=असवत । नञ तत्पुरुष समास । निशिता—नि+शी+ क्त=निशित । इषव —इष+उ=इषु । प्रथमा विभक्ति का बहुवचन= इषव ।

अलकार—उपमा और काव्यलिङ्ग ।

धूर्त मनुष्य तीक्ष्ण बाणो के समान अरक्षित अग वालो मे प्रवेश करके उनका विनाश कर देते है । इस वाक्य मे धूर्त मनुष्य और राज्य के अरक्षित अग उपमेय, इषु और शरीर के अरक्षित अग उपमान प्रवेश करके विनाश करना साधारण धर्म तथा इव उपमा वाचक शब्द है । इस प्रकार उपमा के चारो अगो के होने से पूर्णोपमा है ।

द्रौपदी कहती है कि जो मनुष्य कपट का आचरण करने वालो के प्रति कपट का आचरण नही करते वे पराजित होते हैं इसका समर्थन करने के लिये वह कहती है कि धूर्त मनुष्य सरल हृदय वालो का विनाश कर देते है । इस प्रकार पदो के अर्थ से समर्थनीय वस्तु का समर्थन करने के कारण वहाँ काव्यलिङ्ग अलकार है ।

छन्द—वशस्थ ।

विशेष कथन—राजाओ के लिये सरल प्रकृति का होना उचित नही है । कूटनीति का आश्रय लेकर ही राजा अपनी और राज्य की रक्षा कर सकते

है। कम से कम जो कपटी व्यक्ति है, उसकी कूटनीति का प्रतिकार तो कूट नीति से ही किया जा सकता है। जो राजा सरल हृदय होते हैं और अपने राज्य के अंगों की उचित प्रकार से रक्षा नहीं कर सकते वे निश्चित ही धूर्तों द्वारा विनाश को प्राप्त होते हैं।

घण्टापथ टीका—व्रजन्तीति। मूढधियो निर्विवेकबुद्धयस्ते पराभवं व्रजन्ति, ये मायाविषु मायावत्सु विषये। अस्मायामेधा—इत्यादिना विनिप्रत्ययः। मायिनो मायावन्तः। व्रीह्यादित्वादिनिप्रत्ययः। न भवन्ति। अनैषाथा तद् न्यरयति प्रविश्येति। शठा अपकारिणो धूर्तास्तथाविधानकुटिलानसंवृताङ्गानवर्मितशरीरान्निशिता इषव इव प्रविश्य प्रवेशं कृत्वाऽऽत्मीया भूत्वा घ्नन्ति हि। आर्जवं हि कुटिलेषु न नीतिरिति भावः ॥३०॥

प्रकरण—दुर्योधन की सफलता के समाचारों से क्षुब्ध द्रौपदी युधिष्ठिर के क्रोध को उद्दीप्त करने का प्रयत्न कर रही है। वह कहती है कि दुर्योधन ने कपट का आश्रय लेकर आपका राज्य छीना है। आप भी कपट का प्रयोग करके अपना राज्य वापिस लेने का उद्योग कीजिये। युधिष्ठिर के उत्तम साधनों का उल्लेख करते हुए यह पुनः उलाहना देती है—

गुणानुरक्तामनुरक्तसाधनः
कुलाभिमानी कुलजां नराधिपः।
परैस्त्वदन्यः क इवापहारये-
न्मनोरमामात्मवधूमिव श्रियम् ॥३१॥

अन्वय—अनुरक्तसाधनः कुलाभिमानी त्वदन्यः कः इव नराधिपः गुणानुरक्ताम् कुलजाम् मनोरमाम् श्रियम् आत्मवधूम् इव परैः अपहारयेत्।

संस्कृत व्याख्या—'अनुरक्तसाधनः' अनुरक्तानि स्नेहयुक्तानि अनुकूलानि इत्यर्थः साधनानि सैन्यादयः सहायता यस्य तादृशः 'कुलाभिमानी' कुलस्य श्रेष्ठक्षत्रियवंशस्य अभिमानः गर्वः यस्य तादृशः वंशाभिमानी 'त्वदन्यः' त्वत्

भवत युधिष्ठिरादन्य अपर भवद् यतिरिक्त 'क इव' को वा 'नराधिप' नराणा जनानाम अधिप स्वामी राजा 'गुणानुरक्ता' गुणेषु राज्ञ शौयदया दाक्षिण्यादिषु गुणेषु अथवा सन्धिविग्रहादि षड्गुणप्रयोगेषु अनुरागिणी कुलजा कुले स्ववशे जाता कुलपरम्पराप्राप्ता मनोरमा मन चित्त रमयति आनन्दयति इति ता हृदयानन्द कारिणी 'श्रियम' राजलक्ष्मीम 'आत्मवधूम इव' आत्मन स्वस्य वधूम् भार्याम इव—भार्या पक्षे—गुणानुरक्ता' गुणेषु सौ दर्यादिगुणेषु अनुरक्ता 'कुलजा' श्रेष्ठकुले जाता 'मनोरमा' हृदयानन्दकारिणीम्—पर' अ यै शत्रुभि 'अपहारयेद्' अपहारण कारयेत । स्वयमेव तेभ्य समर्पयेत। कश्चिदपि स्वाभिमानी क्षत्रियो राजा स्वभार्याया अपहरणमिव स्वराजलक्ष्म्या अपहरणम अपि न सहते इति भाव ।

हिन्दी अर्थ—अपने से अनुराग रखने वाले सै य आदि सहायकों से युक्त, अपने उत्तम क्षत्रिय कुल के प्रति अभिमान रखने वाला तुम्हारे अतिरिक्त अन्य कौन राजा गुणों के कारण अनुराग रखने वाली परम्परा से प्राप्त हुई और मन को आनन्दित करने वाली राजलक्ष्मी को गुणो के कारण प्रेम करने वाली कुलीन और सु दर अपनी पत्नी के समान शत्रुओं द्वारा अपहरण करा सकता है ?

भाव—द्रौपदी युधिष्ठिर को उलाहना दे रही है कि आपकी सेना आदि सहायक आपके प्रति अनुराग रखने वाले थे, आप उत्तम कुल मे उत्प न हुये थे आपके शौय आदि गुणो के कारण राजलक्ष्मी आप मे स्थिर थी। वह वशपरम्परा से आपको प्राप्त हुई थी और उससे आपका मन प्रसन्न रहता था। आप कैसे क्षत्रिय है, जो आपने स्वय ही अपनी राजलक्ष्मी को शत्रुओ को सौंप दिया। आपका यह आचरण ऐसा ही है, जैसे कोई व्यक्ति स्नेह करने वाली, सुन्दर और कुलीन पत्नी का स्वय ही अपने शत्रुओ द्वारा अपहरण करा दे।

इस कथन द्वारा द्रौपदी युधिष्ठिर से कहती है कि आपने मुझको जुये मे हार कर स्वयं ही दुर्योधन को सौंप दिया था। आपके क्षत्रियत्व को धिक्कार है।

वाच्यपरिवर्तन—अनुरक्तसाधनेन कुलाभिमानिना स्वदन्येन केन इव नराधिपेन गुणानुरक्ता कुलजा मनोरमा श्री आत्मवधू इव परं अपहार्यते।

टिप्पणियाँ

गुणानुरक्ताम्—गुणेषु अनुरक्ताम्। सप्तमी तत्पुरुष समास। अनु+रञ्ज्+क्त+टाप्=अनुरक्ता। **अनुरक्तसाधन**—अनुरक्तानि साधनानि यस्य स। बहुव्रीहि समास। साध+ल्युट (अन)=साधन। **कुलाभिमानी**—कुलस्य अभिमानी। षष्ठी तत्पुरुष समास। अथवा कुलस्य अभिमान यस्य स। बहुव्रीहि समास। अभि+मन्+घञ=अभिमान। **कुलजाम्** कुले जाताम् सप्तमी तत्पुरुष समास। कुल+जन्+ड+टाप=कुलजा। **नराधिप**—नराणाम् अधिप। षष्ठी तत्पुरुष समास। अधि पाति रक्षति अर्थ मे अधि+पा+क=अधिप। **स्वदन्य**—स्वत अन्य। पञ्चमी तत्पुरुष समास। अपहारयेत—अप+हृ+णिच=अपहारय। विधिलिङ के प्रथम पुरुष के एकवचन मे=अपहारयेत। **मनोरमाम्**—मन रमयति अर्थ मे मन+रम्+टाप्=मनोरमा। **आत्मवधूम्**—आत्मन वधूम् षष्ठी तत्पुरुष समास।

अलङ्कार—उपमा।

छन्द—वंशस्थ।

कौन व्यक्ति लक्ष्मी का अपनी वधू के समान अपहरण करा सकता है। इस वाक्य मे लक्ष्मी उपमेय, वधू उपमान, अपहरण करा देना साधारण धर्म और इव उपमा वाचक शब्द है। उपमा के चारो अगो के होने से यहा पूर्णोपमा है।

विशेष कथन—इस श्लोक द्वारा कवि यह व्यक्त करना चाहते है कि अनुकूल साधनो से युक्त होता हुआ भी उच्च कुल मे उत्पन्न हुआ भी, दया, दाक्षिण्य आदि गुणो से युक्त होता हुआ भी और सधि आदि छ गुणो का प्रयोग करता हुआ भी राजा यदि कायर है और कूटनीति का प्रयोग नही करता तो उसकी कुलपरम्परागत राजलक्ष्मी का भी शत्रु अपहरण कर लेते है।

घण्टापथ टीका — गुणेति। अनुरक्तसाधनोऽनुकूलसहायवान्। उक्तं च कामन्दकीये 'उद्योगादनिवृत्तस्य ससहायस्य धीमतः। छायेवानुगता तस्य नित्यं श्री सहचारिणी' इति कुलाभिमानी क्षात्रियत्वाभिमानी कुलीनत्वाभिमानी च त्वद् यस्त्वत्तोऽन्यः। 'अन्यारात्—' इत्यादिना पञ्चमी। क इव नराधिपो गुणैः सन्ध्यादिभिः सौन्दर्यादिभिश्चानुरागिणी कुलजा कुलक्रमादागता कुलीना च मनोरमा श्रियमात्मवधूमिव स्वभार्यामिव 'वधूर्जाया स्नुषा स्त्री च' इत्यमरः। परैः शत्रुभिरपहारयेत्। स्वयमत्रापहारं कारयेदित्यर्थः। कलत्रापहारवल्लक्ष्म्यपहारोऽपि राज्ञां मानहानिकरत्वादनुपेक्षणीय इति भावः ॥३१॥

***

प्रकरण—दुर्योधन द्वारा किये गये अपकारों से व्यथित चित्त वाली द्रौपदी उसकी सफलता के समाचारों से क्षुब्ध होकर युधिष्ठिर के क्रोध को उद्दीप्त करने के लिये पुनः कहती है।

भवन्तमेतर्हि मनस्विगर्हिते
विवर्तमानं नरदेव ? वर्त्मनि।
कथं न मन्युर्ज्वलयत्युदीरितः
शमीतरुं शुष्कमिवाग्निरुच्छिखः ॥३२॥

अन्वय—नरदेव ! एतर्हि मनस्विगर्हिते वर्त्मनि विवर्तमानम् भवन्तम् उदीरितः मन्युः शुष्कम् शमीतरुम् उच्छिखः अग्निः इव कथम् न ज्वलयति।

संस्कृत व्याख्या—'हे नरदेव !' नरेषु मनुष्येषु देवः नरदेवः 'एतर्हि' इदानीम् अस्मिन् दुरवस्थायामपि 'मनस्विगर्हिते' मनस्विभिः स्वाभिमानिभिः गर्हिते निन्दनीये 'वर्त्मनि' मार्गे 'विवर्तमानं' सन्तिष्ठमानं शत्रुभिः कृतां दुरवस्थाम् अनुभवमानं 'भवन्तं' त्वाम् 'उदीरितः' उद्दीपितः 'मन्युः' क्रोधः 'शुष्कं' नीरसं शमीतरुं' शमीवृक्षम् 'उच्छिखः' उद्गता उद्दीप्ता शिखा

ज्वाला यस्य तादृश 'अग्नि' अनल इव 'कथ' केन कारणेन न 'ज्वलयति' उद्दीपयति।

हिन्दी अर्थ—हे मनुष्यों में देवता इस समय स्वाभिमानी व्यक्तियों द्वारा निन्दनीय मार्ग मे बिलबिलाते हुये आपका उद्दीप्त हुआ क्रोध उसी प्रकार क्यों नहीं जला देता, जिस प्रकार भूखे शमी के वृक्ष को उद्दीप्त ज्वालाओं वाली अग्नि जला देती है।

भाव—द्रौपदी युधिष्ठिर का उलाहना दे रही है कि आपका क्या कहना है आप तो मनुष्यों मे देवता है। आप शत्रुओं द्वारा उत्पन्न की गई इस दुर्दशा मे पड़े हुए, जिसको स्वाभिमानी मनुष्य कभी भी सहन नहीं कर सकते बिलबिला रहे हैं। इस दुर्दशा को अनुभव करते हुये किसी स्वाभिमानी का हृदय क्रोध से जल नहीं जावेगा ? तब तो आपको अपने मन मे क्रोध और उत्साह को भर कर अपनी विपत्तियों का प्रतिकार करने के लिये उद्यत हो जाना चाहिये।

वाच्यपरिवर्तन—नरदेव ! एतर्हि मनस्विगर्हिते वर्त्मनि विवर्तमानो भवान् उद्दीरितेन मन्युना शुष्क शमीतरु उच्छिखेन अग्निना इव कथं न ज्वलयते।

टिप्पणियाँ

एतर्हि—अस्मिन् काले अर्थ मे इदम शब्द से 'इदमोर्हिल्' सूत्र से र्हिल् प्रत्यय होकर इदम्+र्हिल=एतर्हि। यहाँ इदम शब्द को एत आदेश होता है। **भवन्तम**—भा+डवतु=भवत द्वितीया विभक्ति का एकवचन=भवन्तम। **मनस्विगर्हिते**—मनस्विभि गर्हिते। तृतीया तत्पुरुष समास। प्रशस्तं मन यस्य अर्थ मे मनस शब्द मे 'अस्मायामेधास्रजो विनि' सूत्र से विनि प्रत्यय होकर मनस्+विनि=मनस्विन्। गर्ह+क्त=गर्हित। **विवर्तमानम्**—वि+वृत+शानच्=विवर्तमान। **नरदेव**—नरेषु देव। सप्तमी तत्पुरुष समास। **वर्त्मनि**—वृत+मनिन्=वर्त्मन। सप्तमी विभक्ति का एकवचन=वर्त्मनि। **मन्यु**—मन्+युच। **उदीरित**—उत्+ईर+णिच+क्त। **शमीतरुम**—शमी चासौ तरुश्च। कर्मधारय समास। **शुष्कम्**—शुष्+क्त ('शुष क' सूत्र

से क्त को क आदेश)=शुष्क । अग्नि—अङ्ग्+नि=अग्नि । उच्छिख—उद्गता शिखा यस्य स । बहुव्रीहि समास ।

अलकार—उपमा ।

जिस प्रकार अग्नि सूखे वृक्ष को जला देती है, उसी प्रकार क्रोध आप जैसे वीररसविहीन को क्या नही जला देता । यहाँ अग्नि और शुष्क वृक्ष उपमान, क्रोध और युधिष्ठिर उपमेय, जला देना साधारण धर्म और इव उपमा वाचक शब्द है । उपमा के चारो अङ्गो के होने से यह पूर्णोपमा है ।

छन्द—वंशस्थ ।

विशेष कथन—मानस्वी मनुष्य शत्रुओ द्वारा किये गये अपमान को कभी सहन नही करते ।

घण्टापथ टीका—भव तमिति । नरदेव ! हे नरेन्द्र ! एतर्हीदानीम्, अस्मिन्नापत्कालेऽपीत्यर्थ 'एतर्हि सम्प्रतीदानीमधुना साम्प्रत तथा' इत्यमर । 'इदमो र्हिल्' इति र्हिल प्रत्यय । 'एतेतौ रथो' इति एतादेश । आपदमेवाह—मनस्विगर्हिते शूरजनजुगुप्सिते वर्त्मनि मार्गे विवर्त्तमान, शत्रुकृता दुर्दशामनुभवन्तमित्यर्थ । भव त त्वामुदीरित उद्दीपितो मन्यु क्रोध । शुष्क नीरसम् 'शुष क' इति निष्ठातकारस्य ककार । शमी चासौ तरुश्चेति विशेषणसमास तम् । शमीग्रहण शीघ्रज्वलनस्वभावात्कृतम् । उच्छिख उद्गतज्वाल 'घृणिज्वाले अपि शिखे' इत्यमर । वह्निरिव । कथ न ज्वलयति । ज्वलयितुमुचितमित्यर्थ । 'मितां ह्रस्व' ।।३२।।

प्रकरण—दुर्योधन की सफलता के समाचारो को सुनकर उसके द्वारा की गई अपनी दुर्दशा का स्मरण करके द्रौपदी अत्यधिक क्रोधित हो जाती है और युधिष्ठिर के क्रोध को भडकाने का प्रयत्न करती है । वह कहती है कि आपको क्रोध करके शत्रुओं के विनाश का उद्योग करना चाहिये । जो क्रोध नहा करता, उसका कहीं भी आदर नही होता—

अवन्ध्यकोपस्य विहन्तुरापदां
भवन्ति वश्या स्वयमेव देहिन

अमर्षशून्येन जनस्य जन्तुना
न जातहार्देन न विद्विषादरः ॥३३॥

अन्वय—अवन्ध्यकोपस्य आपदाम् विहन्तुः देहिनः स्वयम् एव वश्याः भवन्ति। जन्तुना अमर्षशून्येन जनस्य न जातहार्देन न विद्विषा आदरः।

संस्कृत व्याख्या—'अवन्ध्यकोपस्य' अवन्ध्यः अनिष्फलः कोपः क्रोधः यस्य तस्य सफलकोपस्य इति भावः 'आपदाम्' आपत्तीनां शत्रूणामित्यर्थः 'विहन्तुः' विशेषेण नाशकस्य शत्रुनिग्रहक्षमस्य जनस्य 'देहिनः' प्राणिनः 'स्वयम् एव' स्वतः एव 'वश्याः' आधीनाः 'भवन्ति' जायन्ते। 'जन्तुना' जननः 'अमर्षशून्येन अमर्षात् क्रोधात् शून्येन रहितेन विप्रकृष्टेन अपि क्रोधं न कुर्वता तेन हेतुना 'जनस्य' देहिनः न 'जातहार्देन' जातः सम्भूतः हार्दः स्नेहः यस्य तेन मित्रेण इत्यर्थः न 'विद्विषा' शत्रुणा 'आदरः' सम्मानः भवति अथवा शत्रुणादरः भयं न भवति अमर्षशून्यं जनं न मित्राणि गणयन्ति न शत्रवः। मित्राणि तस्य आदरं न कुर्वन्ति शत्रवः च तस्मात् भयं न कुर्वन्ति। अतः अस्मिन् विषये त्वया कोपः कर्त्तव्य एव।

हिन्दी अर्थ—अनिष्फल क्रोध करने वाले और शत्रुओं का विनाश करने वाले व्यक्ति के वश में प्राणी स्वयं ही हो जाते हैं। व्यक्ति के क्रोध से हीन होने पर उसका न तो मित्रगण ही आदर करते है और नाहीं उससे शत्रु भय करते हैं।

भाव—क्रोध को यद्यपि मनुष्यों का महान शत्रु कहा गया है, तथापि संसार में रहते हुये अवसर पड़ने पर क्रोध अवश्य करना चाहिये। तेजस्वी मनुष्य को अवसर उपस्थित होने पर क्रोध अवश्य करना चाहिये, परन्तु उसका क्रोध निष्फल नहीं होना चाहिये। उसको सदा शत्रुओं का विनाश करने में उद्यत रहना चाहिये। अन्य व्यक्ति ऐसे मनुष्य के वश में स्वयं ही हो जाते हैं, जो व्यक्ति कभी भी क्रोध नहीं करता, वह न तो किसी से आदर पा सकता है और नाहीं कोई उससे डरता है।

सस्कृत व्याख्या—'लोहितच दनोचित ' लोहित रक्तवरण च दन मलयजम उचित याग्य यस्य तादश रक्तच दनस्य लेपनस्य अभ्यासी इत्यथ , पर तुम्रधुना रेणुरूषित ' रेणुभि धूलिभि रूषित चच्छुरित 'महारथ ' महान् रथ स्य दन यस्य स महति रथे गमनशील परन्तु अधुना 'पदाति ' पादाभ्याम् अतति सच रति इति तादृश पादचारी इत्यथ । 'अ तर्गिरि' गिरिषु पवतेषु अ त मध्ये 'परिभ्रमन' पयटन् 'अयम्' एष सम्मुखे अवतिष्ठन् वकोदर ' भीम 'कच्चित्' किम् इति दु खसूचके प्रश्ने 'सत्यधनस्य' सत्यमेव धन वित्त यस्य तस्य सत्य प्रतिज्ञस्य 'मानस' चित्त नो 'दुनोति' व्यथयति ? वृकोदरस्य एताम अवस्था दृष्टवा अपि किं भवत मनसि पोडा न जायते ?

हि दी अथ—लाल च दन के लेप करने का अभ्यासी, पर तु अब धूलियो से धूसरित होता हुआ, विशाल रथ पर घूमने वाला, परन्तु अब पदल विच रण करता हुआ पवतो के बीच भटकता हुआ यह भीम क्या सत्य प्रतिज्ञा वाले आपके मन को व्यथित नहीं करता है ?

भाव—छोटे भाई भीम की दुरवस्था को देखकर भी क्या आपके मन मे व्यथा उत्प न नही होती ? कहाँ तो पहले यह लाल चन्दन का लेप किया करता था और कहाँ अब यह धुलियो से धूसरित हो रहा है । कहाँ पहले यह विशाल और उत्तम रथ की सवारी किया करता था और कहाँ अब पैदल ही भटकता फिरता है । कम से कम प्यारे भाई भीम की इस अवस्था को तो देखकर आपके मन मे क्रोध का सचार होना चाहिये । अपनी इस प्रतिज्ञा को आप कब तक ढोते रहेगे ।

वाच्यपरिवर्तन—लोहितच दनोचितेन रेणुरूषितेन महारथेन पदातिना अन्तर्गिरि परिभ्रमता अनेन वृकोदरेण कच्चित् सत्यधनस्य मानम न दूयते ?

टिप्पणियाँ

परिभ्रमन—परि+भ्रम् +शतृ=परिभ्रमत् । पु ल्लिङ्ग मे प्रथमा विभक्ति का एकवचन=परिभ्रमन । लोहितचन्दनोचित —लोहितच दन । लोहितचन्दन कमधारय समास । लोहित च दनस्य उचित लोहितचन्दनोचित। षष्ठी तत्पुरुष समास । अथवा लोहितचन्दनोहितचन्दनम् उचित यस्य स बहुव्रीहि समास । रुह्

+इतन् (र को ल होकर) लोहित। ताम्र का बना हुआ या लाल रग का च द्+ल्युट (अन)=च दन। पदाति — पादाभ्याम अतति अर्थ मे पाद+अत+इण=पदाति । अन्तर्गिरि–गिरिषु इस अर्थ मे सप्तमी विभक्ति के अर्थ मे अन्तर अव्यय का प्रयोग होकर उसका गिरि के साथ अव्ययीभाव समास होकर अन्तर्गिरि रेणुरुषित—रेणुभि रूषित तृतीया तत्पुरुष समास। री+नु =रेणु। रूष्+क्त+रषित। महारथ — महान रथ यस्य स । बहुव्रीहि समास। सत्यधनस्य—सत्य धन यस्य तस्य। बहुव्रीहि समास। सते हितम अर्थ मे सत्+यत्=सत्य। मानसम—मनस+अण=मानस । कच्चित्— किम+चिन=कत। चि+क्विप=चित। कत् च चित कच्चित। हर्ष, पीडा आदि भावो को व्यक्त करने के लिये यह प्रश्नवाचक अव्यय है। वृकोदर — वृक इव उदर यस्य स। बहुव्रीहि समास। भीम के बहुत अधिक मात्रा मे भोजन करने के कारण उसको वृकोदर कहा जाता था।

अलकार—विषम। विषम अलकार का लक्षण—

विषम वर्ण्यते यत्र घटनाननुरूपयो ।

जहाँ परस्पर विरुद्ध वस्तुओ का वर्णन किया जावे, वहाँ विषम अलकार होता है। इस पद्य मे कहा तो यह भीम लाल च दन के लेपन का अभ्यासी है और कहाँ यह अब धूलि से धूसरित है, कहा तो यह विशाल रथ पर सवारी करता था और कहाँ अब पदल भटकता है, इस प्रकार विरुद्ध वस्तुओ का वर्णन करने के कारण विषम अलकार है।

छन्द—वशस्थ।

विशेष कथन—इन व्यङ्ग्यात्मक वचनो द्वारा द्रौपदी ने युधिष्ठिर के क्रोध को उद्दीप्त करने का प्रयत्न किया है। इस छोटे भाई भीम की दुर्दशा को देखकर भी क्या आप तेरह वर्ष तक ऐसे चुपचाप बैठे हुये सत्य की रक्षा करते रहेगे और प्यारे भाईयो को दर दर की ठोकरे खिलाते रहेगे ?

घण्टापथ टीका—परिभ्रमति नति। लोहितचन्दनोचित उचितलोहितचन्दन । 'वाऽऽहिताग्न्यादिषु' इति साधु । अभ्यस्तरक्तचन्दन इत्यर्थ । अभ्यस्तेऽप्युचित न्याय्यम्' इति यादव । महारथो रथचारी। उभयत्रापि प्रागिति शेष । अथ

तु रेणुरूषितो धूलिच्छुरित पादाभ्याममतति गच्छतीति पदाति पादचारी 'अज्यतिभ्या च' इत्यनुवृत्तौ पादे च इत्यौणादिक इणप्रत्यय । 'पादस्य पदाज्यातिगोपहतेषु' इति पदादेश । अन्तर्गिरि गिरिष्वन्त । विभक्त्यर्थेऽव्ययीभाव । 'गिरेश्च सेनकस्य इति' विकल्पात्समासान्ताभाव । परिभ्रमन्नयं वृकोदरो भीम । सत्यधनस्येति सोल्लुण्ठनवचनम् । अद्यापि त्वया सत्यमेव रक्ष्यते, न तु भ्रातर इति भाव । तवेति शेष । मानस नो दुनोति कच्चिन्न परितापयति किम । 'कच्चित्कामप्रवेदने' इत्यमर । स्वाभिप्रायाविष्करण कामप्रवेदनम ।।३४।।

प्रकरण—दुर्योधन की सफलता के समाचारो से अत्यधिक क्रुद्ध हुई द्रौपदी युधिष्ठिर के हृदय मे क्रोध के भावो को उद्दीप्त करने का प्रयत्न कर रही है। वह छोटे भाईयो की दुर्दशा को दिखा रही है। पहले भीम की अवस्था का वर्णन करके अब वह अर्जुन की दुरवस्था दिखाती है—

विजित्य य प्राज्यमयच्छदुत्तरान्
कुरूनकुप्य वसु वासवोपम ।
स वल्कवासासि तवाधुनाऽऽहरन्
करोति मन्यु न कथ धनञ्जय ।।३५।।

अन्वय—वासवोपम य धनञ्जय उत्तरान् कुरून् विजित्य प्राज्य अकुप्यम् वसु अयच्छत्, अधुना स वल्कवासासि आहरन् तव मन्युम् कथम् न करोति ।

संस्कृत व्याख्या—'वासवोपम' वासव (इन्द्र) उपमा यस्य स इन्द्रसदृश य पराक्रमी 'धनञ्जय' अर्जुन 'उत्तरान् कुरून्' उत्तर कुरुदेश 'विजित्य' जित्वा 'प्राज्य' प्रभूतम् 'अकुप्य' स्वर्णरजतात्मक 'वसु' धनम् 'अयच्छत' तुभ्य दत्तवान, 'अधुना' अस्मिन काले 'स' असौ पराक्रमी तव उपकारी च अर्जुन 'वल्कवासासि' वृक्षत्वग्वसनानि 'आहरन' उपनयन 'कथ' कस्मात् कारणात् 'तव' भवत युधिष्ठिरस्य मन्यु क्रोध न 'करोति' जनयति। य अर्जुन

इ द्रतुल्य पराक्रमी सन उत्तरकुरून विजित्य तुभ्य प्रभूत घन दत्तवान म एव अधु ।। वल्कलवसनानि आहरति । एतद् दृष्टवा अपि त्व निर्विकार एव इत्येव आश्चयम ।

हिन्दी अथ—इ द्र के समान पराक्रमी जिस अजु न ने उत्तर कुरु देश को जीत कर आपके लिये प्रभूत मात्रा मे स्वण रजत आदि से युक्त धन लाकर दिया था, इस समय वह ही अज न वनवास की अवधि म वल्कल वस्त्रो को एकत्रित करता हुआ किस कारण से आपके मन मे क्रोध को उत्प न नही कर रहा है ?

भाव—आपका छोटा भाई इ द्र के समान पराक्रमी है। उसन उत्तर कुरु देश को जीता है और आपके लिये प्रभूत मात्रा म धन सम्पत्ति लाकर दी है। उस अजु न की दुरवस्था को देख कर तो आपको दुर्योधन के प्रति क्रोध आना चाहिये। क्या आप यह देखकर भी प्रतिक्षा के लिये ही बठे रहेंगे ?

वाच्यपरिवतन—वासवोपमन येन धनञ्जयेन उत्तरा कुरव विजित्य प्राज्यम अकुप्य वसु अयच्छत, अधुना तेन वल्कवासासि आहरता तव म यु कथ न क्रियते ?

टिप्पणियाँ

विजित्य—वि+जि+क्त्वा (ल्यप)। प्राज्यम—प्र+अज+ण्यत = प्राज्य। अयच्छत—दाण धातु लड लकार प्रथम पुरुष एकवचन। दाण के स्था न पर यच्छ आदेश होता है। उत्तरान कुरून्—उत्तर कुरुदेश। वतमान देहली के चारो ओर के प्रदेश स लेकर हरिद्वार के पास पवतों की तलहटियो तक कुरुदेश कहलाता था। यह प्रदेश कुरुवशियो के अधिकार मे था। इसके उत्तर का पवतीय प्रदेश उत्तर कुरुदेश कहलाता था। पुराणो के अनुसार मेरु पवत के उत्तर का देश कुरुदेश है। राजसूय यज्ञ के अवसर पर अजु न न इसको जीता था। अकुप्यम—गुप+क्यप् (ग को क आदेश होकर)=कुप्य। और रजत को छोड कर अ य धातुओ को कुप्य कहा जाता है। न अकुप्य कुप्य। स्वण और रजत धातुओ से युक्त धन। वल्कवासासि—वल्कस्य वासासि।

षष्ठी तत्पुरुष। वल+क=वल्क। वस्यते आच्छाद्यते अनेन अथ म वस+असुन=वासस। नपुंसकलिङ्ग मे द्वितीया विभक्ति का बहुवचन=वासांसि। आहरन—आ+हृ+शतृ=आहरत्। प्रथमा विभक्ति का एकवचन=आहरन्। धनञ्जय—धनानि जयति अथ मे धन+जि+खच् (मुम का आगम)=धनञ्जय। अर्जुन का एक नाम धनञ्जय भी था।

अलकार—उपमा और परिकराङ्कुर।

'वासवोपम धनञ्जय' इस वाक्य मे अर्जुन का सादृश्य इन्द्र से दिखाया गया है यहाँ वासव उपमान, धनञ्जय उपमेय और उपमा उपमावाचक शब्द है साधारण धर्म का लोप होने से यह धर्मलुप्ता उपमा है। परिकराङ्कुर का लक्षण—

साभिप्राये विशेष्ये तु भवेत्परिकाराङ्कुर ।

जहा किसी विशेष अभिप्राय स विशेष्य के लिये किसी शब्द का प्रयोग किया जावे वहाँ परिकाङ्कुर अलकार होता है। यहा धनञ्जय शब्द म परिकराङ्कुर अलकार है जिस अर्जुन ने उत्तर कुरुदेश को जीत कर प्रचुर धनो को प्राप्त किया था और उसको दूसरो को दे दिया था, वही अब वल्कलवस्त्रो का संचय कर रहा है। इससे अर्जुन की अति दयनीय अवस्था व्यञ्जित होती है।

छन्द—वंशस्थ।

विशेष कथन—इस श्लोक द्वारा भी द्रौपदी ने युधिष्ठिर के प्रति तीव्र व्यङ्ग्य किया है। जिस अर्जुन ने तुम्हारे कोष को प्रचुर सम्पत्तियों से भर दिया था, उसकी भी तुम्हारे ही कारण यह विपन्नावस्था है।

घण्टापथ टीका—विजित्येति। वासव इन्द्र उपमा उपमान यस्य स वासवोपम इन्द्रतुल्यो यो धनञ्जय उत्तरान्कुरून् मेरोरुत्तरान्मानुपान्देशविशेषान्विजित्य प्राज्य प्रभूतम। 'प्रभूतं प्रचुर प्राज्यम्' इत्यमर। कुप्यादन्यदकुप्यम हेमरूप्यात्मकम। 'स्यातकोशश्च हिरण्य च हेमरूप्य कृताकृते। ताभ्या यदन्यत्त त्कुप्यम इत्यमर। वसु धनमयच्छद् दत्तवान्। 'पाघ्रा'—इत्यादिना दाणो यच्छादेश। स धन जयति इति धनञ्जयोऽर्जुन। 'सञ्ज्ञाया भृतृवृजि'—

इत्यादिना खच्प्रत्यय । 'अरुर्द्विषद्'—इत्यादिना मुमागम । अधुनाऽस्मिन काले । 'अधुना' इति निपातनात्साधु । तव वल्कवासास्या॰रन कथ तव मन्यु क्रोध दु ख वा न करोति ॥३५॥

प्रकरण—दुर्योधन की सफलताओ के समाचारो को सुनकर अत्यधिक क्रोधित हुई द्रौपदी युधिष्ठिर के क्रोध को उद्दीपत करने के लिये कहती है कि दुर्योधन के कारण आप सबको इतने अधिक कष्ट और अपमान सहन करने पड रहे हैं । भीम अर्जु न की अवस्था का वर्णन करके वह नकुल और सहदेव की दुरवस्था को बताती है—

वनान्तशय्याकठिनीकृताकृती
कचाचितौ विष्वगिवागजौ गजौ ।
कथ त्वमेतौ धृतिसयमौ यमौ
विलोकयन्नुत्सहसे न बाधितुम् ॥३५॥

अन्वय—वनान्तशय्याकठिनीकृताकृती विष्वक कचाचितौ अगजौ गजौ इव एतौ यमौ विलोकयन् त्व धृतिसयमौ बाधितुम कथम न उत्सहसे ?

सस्कृत व्याख्या—'वना तशय्याकठिनीकृताकृती' वनान्त वनप्रदेश एव शय्या आस्तरण तया कठिनीकृते कठोरीकृत आकृती शरीरे ययो तौ विष्वक सर्वत 'कचाचितौ' कच केशै आचितौ व्याप्तौ केशानाम् असस्कारेण विशीर्णकेशौ अत एव 'अगजौ' अगे पर्वते जातौ उत्पन्नौ 'गजौ' करिणौ इव दृश्यमानौ 'एतौ' इमौ 'यमौ' युग्मजातौ नकुलसहदेवौ 'विलोकयन' पश्यन् अपि त्व युधिष्ठिर 'धृतिसयमौ' च सयम च धृति च धैर्य च क्रोधनिग्रह च तौ 'बाधितु ' परित्यक्तु 'कथ' कस्मात् कारणात् न 'उत्सहसे' उत्साहितो भवसि । नकुलसहदेवयो ईदृशी दुरवस्था विलोक्य अपि त्व कोपेन कथ न प्रज्ज्वलसि ?

हिंदी अर्थ—वनप्रदेश की शय्या पर सोने से कठोर आकृति वाले, चारों ओर से बिखरे बालों वाले, इसलिये पर्वत पर उत्पन्न हुए हाथियों के समान दिखाई देने वाले इन यमज भाइयों नकुल और सहदेव को देखते हुये भी तुम धैर्य और संयम का परित्याग करने के लिये क्यों नहीं बाधित होते ?

भाव—ये नकुल और सहदेव कितनी कोमल और सुन्दर आकृति वाले थे। वन की कठोर भूमि पर सोने से इनकी आकृति कठोर हो गई है। इनके बाल कभी सवारे नहीं जाते। वे चारों ओर बिखर रहे हैं। इसलिये ये पर्वतों पर उत्पन्न हुए हाथियों के समान प्रतीत हो रहे हैं। इनको देख कर तुम भी १२ वर्ष के वनवास और एक वर्ष के अज्ञातवास की प्रतिज्ञा को लिये ही बैठे रहोगे ? अब तुमको धैर्य और संयम का परित्याग कर दुर्योधन से बदला लेने के लिये उद्यत हो जाना चाहिये।

वाच्यपरिवर्तन—वनान्तशय्याकठिनीकृताकृती विष्वक कचाचितौ अगजौ गजौ इव एतौ यमौ विलोकयता त्वया धृतिसंयमौ बाधितुं कथं न उत्सह्यते !

टिप्पणियाँ

वनान्तशय्याकठिनीकृताकृती—वनस्य अन्तः वनान्तः । षष्ठी तत्पुरुष समास। वनान्तश्चासौ शय्या च वनान्तशय्या। कर्मधारय समास। वनान्तशय्यया कठिनीकृता आकृतिः ययोः तौ वनान्तशय्याकठिनीकृताकृती बहुव्रीहि समास। अकठिना कठिना कृता अर्थ में कृ धातु के योग में कठिन शब्द से च्वि प्रत्यय कठिन+च्वि+कृता—कठिनीकृता। कृ+क्त+टाप्=कृता। आ+कृ+क्तिन् आकृति। शी+क्यप+टाप=शय्या। **कचाचितौ**—कचैः आचितौ। तृतीया तत्पुरुष समास। कच्+अच्=कच। आ+चि+क्त=आचित। **विष्वक**—विषुम् अञ्चति अर्थ में विषु+अञ्च+क्विन=विष्वक। **अगजौ**—अगे जातः अर्थ में अग+जन्+ड=अगज। द्वितीया विभक्ति का द्विवचन=अगजौ। न गच्छति अर्थ में न+गम्+ड=अग। पर्वत। **गजौ**—गज् धातु का अर्थ है—मदो मत्त होकर शब्द करना। गज्+अच=गज। **धृतिसंयमौ**—धृतिश्च संयमश्च। द्वन्द्व समास। धृ+क्तिन=धृति। सम्+यम्+अप=

सयम । विलोकयन—वि+लोक+शतृ=विलोकयत । प्रथमा विभक्ति का एव वचन=विलोकयन् । उत्सहसे—उत् उपसग पूवक सह धातु का लट लकार मध्यम पुरुष का एकवचन । बाधितुम—बाध+तुमुन् ।

अलकार—उपमा परिकर और विरोधाभास ।

अगजौ गजौ इव यहा गज उपमान, यमौ उपमेय, भूमि पर शयन करना आदि साधारण धम और इव उपमा वाचक शब्द हैं । उपमा के चारो अङ्गो के होने से पूर्णोपमा है ।

नकुल और सहदेव के विशेषणो वना तशय्या' आदि से उनकी अति दयनीय अवस्था का बोध होता है । साभिप्राय विशेषणो का प्रयोग करने से यहा परिकर अलकार है ।

'आभासत्वे विरोधस्य विरोधाभास उच्यते' । जहा वस्तुत विरोध न हो किन्तु विरोधाभास का आभास होता हो, वहा विरोधाभास अलकार होता है । अगजौ गजौ इव मे जो गज नही हैं और गज के समान है, इस प्रकार विरोध की प्रतीति होती है । परन्तु जो पवतो पर उत्पन्न हुए गजो के समान हैं इस प्रकार अथ करने पर विरोध न रहने से विरोधाभास अलकार होता है ।

छन्द—वशस्थ ।

विशेष कथन—इन श्लोको मे छोटे भाइयो की दशा को दिखा कर युधिष्ठिर मे क्रोध का सचार करने का प्रयत्न किया गया है ।

घण्टापथ टीका—वना तेति । वना तौ वनभूमिरेव शय्या तया कठिनी कृताकृती कठिनीकृतदेहौ । 'आकारो देह आकृति' इति वजयन्ती । विष्व वसमन्तात । 'सम ततस्तु परित सवतो विष्वगित्यपि इत्यमर । कचाचितौ कचव्याप्तौ विशीणकेशौ इत्यथ । अत एवागजौ गिरिसम्भवौ गजाविव स्थितावेतौ यमौ युग्मजातौ, माद्रीपुत्रावित्यथ । यमौ दण्डधरे ध्वाङ्क्षे सयमे यमजेऽपि च' इति विश्व । विलोकयस्त्व क्षत्र वृतिसयमौ सतोषनियमौ । 'धतिर्योगान्तरे धय धारणाध्वरतुष्टिषु' इति विश्व । बाधितु नोत्सहसे न प्रवतसे । शकध'—इत्यादिना तुमुन । अहो ते महद्धयम् इति भाव ॥३६॥

प्रकरण—दुर्योधन की सफलताओं के समाचारों को सुनकर अत्यधिक क्रोधित हुई द्रौपदी युधिष्ठिर के क्रोध को उभारने का प्रयत्न कर रही है। दुर्योधन द्वारा दिये गये कष्टों और अपमानों का वर्णन करती हुई वह पहले भीम, अर्जुन, नकुल और सहदेव इन चारों भाइयों की दुरवस्था को बताती है, इसके बाद वह स्वयं युधिष्ठिर की दशा की ओर संकेत करती है—

इमामहं वेद न तावकीं धियं
विचित्ररूपाः खलु चित्तवृत्तयः ।
विचिन्तयन्त्या भवदापदं परां
रुजन्ति चेतः प्रसभं ममाधयः ॥३७॥

अन्वय—अहम् इमाम् तावकीम् धियम् न वेद । खलु चित्तवृत्तयः विचित्ररूपाः । पराम् भवदापदम् विचिन्तयन्त्याः मम चेतः आधयः प्रसभम् रुजन्ति ।

संस्कृत व्याख्या—अहम् द्रौपदी 'इमाम्' एनां 'तावकीं' त्वदीयां 'धियं' बुद्धिं न 'वेद' जानामि । 'खलु' निश्चयेन 'चित्तवृत्तयः' चित्तानां मनसां वृत्तयः व्यवहाराः मनोवृत्तयः इत्यर्थः 'विचित्ररूपाः' विचित्राणि अद्भुतानि रूपाणि प्रकाराः यासां तादृशाः भवन्ति । परन्तु 'परां' महतीं 'भवदापदं' भवतः तव आपदं विपत्तिं विचिन्तयन्त्याः' विचारयन्त्याः मम द्रौपद्याः चेतः' मनः 'आधयः' मनोव्यथाः 'प्रसभं' हठात् 'रुजन्ति' पीडयन्ति । तव दुर्दशां दृष्ट्वा मम मनसि सततं पीडा जायते इत्यर्थः ।

हिन्दी अर्थ—मैं आपकी बुद्धि के विषय में तो नहीं जानती । निश्चय से मनोवृत्तियाँ नाना प्रकार की होती हैं । परन्तु आपकी महान विपत्ति का ध्यान करते हुये मेरे मन को मनोव्यथायें बलात् पीड़ित करती हैं ।

भाव—आपकी बुद्धि की बात मैं समझ नहीं पा रही हूं, क्योंकि यद्यपि आपको भी कष्ट कम नहीं हो रहे हैं तो भी आप इस प्रकार शान्त बैठे हुये हैं । ठीक है, संसार में अनेक प्रकार की मनोवृत्तियों के मनुष्य होते हैं । सबकी चित्तवृत्तियां एक सी नहीं होतीं । आपकी बुद्धि भी इस प्रकार

बडी विचित्र है। आपको अपनी अवस्था पर शोक हो या न हो, परन्तु आप की दुर्दशा को देखकर मेरे मन को तो बहुत अधिक पीडा होती है।

वाच्यपरिवर्तन—मया इयं तावकी धी न वेद्यते। खलु चित्तवृत्तिभि विचित्ररूपाभि (भूयते)। परा भवदापद विचिन्तयन्त्या मम मन आधिभि प्रसभ रुज्यते।

टिप्पणियाँ

तावकीम—तव इयम अथ म युष्मद्+अण्+डीप। युष्मद् शब्द को तवक आदेश होता है। धियम् - ध्यै+क्विप=धी द्वितीया विभक्ति का एकवचन=धियम्। विचित्ररूपा — विचित्राणि रूपाणि यासा ता। बहुव्रीहि समास। अथवा अतिशयेन विचित्रा अथ मे विचित्र शब्द से रूपप् प्रत्यय होकर विचित्र+रूपप=विचित्ररूप। प्रथमाविभक्ति का बहुवचन=विचित्ररूपा चित्तवृत्तय—चित्तानां वृत्तय। षष्ठी तत्पुरुष समास। चित+क्त=चित्त वृत+क्तिन=वृत्ति। विचिन्तयन्त्या—वि+चिन्त+शतृ+ङीप्=विचिन्तयन्ती। षष्ठी विभक्ति का एकवचन विचिन्तयन्त्या। भवदापदम—भवत आपदम षष्ठी तत्पुरुष समास। आ+पद्+क्विप=आपद्। द्वितीया विभक्ति का एकवचन=आपदम। आधय—आ+धा+कि=आधि। प्रथमा विभक्ति का बहुवचन=आधय।

अलंकार—अर्थान्तरन्यास और काव्यलिङ्ग।

'इम मह वेद न तावकी धियम्' मैं आपकी बुद्धि की बात को तो नहीं जानती। इस विशेष का समर्थन विचित्ररूपा खलु चित्तवृत्तय, मनोवृत्तियाँ विचित्र प्रकार की होती है, इस सामान्य से किया जाने के कारण यहाँ अर्थान्तरन्यास अलंकार है।

"परा भवदापद विचिन्तयन्त्या" आपकी परम आपत्ति का विचार करते हुये इन पदो के अर्थों को 'आधय मम चेत रुजन्ति' मनोव्यथायें मेरे मन को पीडित करती हैं, इस वाक्य के हेतु के रूप में कहा जाने से यहाँ काव्यलिङ्ग अलंकार है।

छन्द—वंशस्थ।

विशेष कथन—संसार में मनुष्यों की मनोवृत्तियाँ अनेक प्रकार की देखी

जाती है। कोई तो थोड़े से अपमान और कष्ट को भी सहन नही कर पाते और थोडा भी कारण उपस्थित होने पर अत्यधिक क्रोधित हो जाते हैं। परन्तु कई व्यक्ति अत्यधिक शान्त स्वभाव के होते है और बड़े से बडा अपमान किये जाने पर भी निर्विकार रहते है और बदला लेने के लिये उनके मन मे किसी प्रकार का उत्साह नही होता।

घण्टापथ टीका—इमामिति। इमा वर्त्तमानाम। तवेमा तावकी त्वदीयाम् 'तस्येदम' इति अण प्रत्यय। 'तवकममकावेकवचने' इति तवकादेश। धिय त्वदापद्विषया वित्तवृत्तिमह न वेद कीदृशी वा न वेद्मि। परबुद्धेरप्रत्यक्षत्वा दिति भाव। 'विदो लटो वा इति लटो णलादेश। न चात्मदृष्टान्तेना पन्नत्वाद् दु खित्वमनुमातु शक्यते। धीरादिष्वनेकान्तिकत्वादित्याशयेनाह—चित्त वृत्तयो विचित्ररूपा धीराधीराद्यनेकप्रकारा खलु। किन्तु परामुत्कृष्टा भवन्ना पद विचिन्तयन्त्या भावयन्त्या मम चेतश्चित्तम्। आधयो मनोव्यथा। 'उपसर्गे घो कि' इति किप्रत्यय। प्रसभ प्रसह्य रुजन्ति भञ्जन्ति। 'रूजोभङ्गे' इति धातोर्लट। पश्यतामपि दु सहा दु खजननी त्वद्विपत्तिरनुभवितार त्वा न विक रोतीति महच्चित्रमित्यर्थ। चेत इति रुजार्थाना भाववचनानामज्वरे इति षष्ठी न भवति। तत्र शेषाधिकाराच्छेषत्वस्य विवक्षितत्वादिति ॥३७॥

प्रकरण—दुर्योधन की सफलताओ को सुनकर अत्यधिक क्रोधित हुई द्रौपदी युधिष्ठिर के भावो को उद्दीप्त करने का प्रयत्न कर रही है। वह कह रही है कि दुर्योधन के कारण न केवल आपके भाइयो भीम, अर्जुन, नकुल और सहदेव को ही विपत्तियाँ झेलनी पड रही हैं, आपकी भी दुर्दशा हो रही है। वह क्रमश उन दशाओ का वर्णन करती है। पहली दुर्दशा यह है—

पुराऽधिरूढ शयन महाधन
विबोध्यसे य स्तुतिगीतिमङ्गलै।
अदभ्रदर्भामधिशय्य स स्थली
जहासि निद्रामशिवै शिवारुतै ॥३८॥

अन्वय—य पुरा महाधनम् शयनम् अधिरूढ स्तुतिगीतिमङ्गलै

विबोध्यसे स अदभ्रदर्भाम् स्थलीम् अधिशय्य अशिवै शिवारुतै निद्राम् जहासि।

संस्कृत व्याख्या—य त्वं युधिष्ठिर 'पुरा' पूर्वम् इन्द्रप्रस्थनगरे प्रसादेषु निवसन् 'महाधन' महत् बहु धनं मूल्यं यस्य बहुमूल्यम इत्यर्थ ' शयनन शय्याम 'अधिरूढ' आरूह्य सुप्त 'स्तुतिगीतिमङ्गल स्तुतीना स्तवाना गीतय गानविशेषा स्तुतिगीतय अथवा स्तुतयश्च गीतयश्च स्तुतिगीतय ता मङ्गलानि तै विबोध्यसे' बोधित क्रियसे। अनद्यतनभूतार्थे लट लकार। स एव त्वम् अधुना 'अदभ्रदर्भाम' अदभ्रा बहुला दर्भा यत्र तादृशी 'स्थली' वनभूमिम् 'अधिशय्य' सुप्त्वा निद्रित सन इत्यर्थ 'अशिव' अमङ्गलकारकै 'शिवारुत शिवाना शृगालीना रुतै रोदनध्वनिभि 'निद्रा' स्वाप जहासि' परित्यजसि। विनिद्रो भवसि इत्यर्थ।

हिन्दी अर्थ—जो आप पहले प्रासादो मे रहते हुये बहुमूल्य बिस्तरे पर आरूढ होकर सोये हुये मंगलकारी स्तुतियो और गीतो से जगाये जाते थे, वे ही अब आप बहुत से कुशो से युक्त वनभूमि पर सोये हुये अमंगलकारी गीदडियो की ध्वनियो से जगाये जाते हैं।

भाव—हे महाराज! आप पहले महलो मे बहुमूल्य कोमल शय्याओ पर सोते थे। अब आप चुभने वाले दर्भों से युक्त वन की भूमि पर सोते हैं। आप को जगाने के लिये पहले मङ्गलकारी स्तुतियाँ और गीत गाये जाते थे। परन्तु अब आप गीदडियो की अमङ्गलकारी रोने की आवाजो से ही जाग जाते है। यह आप पर क्या कम विपत्ति है?

वाच्यपरिवर्तन—य पुरा महाधन शयनम अधिरूढ स्तुतिगीतमङ्गलानि विबोधयन्ति स्म तेन अदभ्रदर्भा स्थली अधिशय्य अशिव शिवारुत निद्रा हार्यते।

टिप्पणियाँ

पुरा—पुर + का = पुरा। अधिरूढ—अधि + रुह् + क्त = अधिरूढ। शयनम—शी + ल्युट (अन) = शयन। द्वितीया विभक्ति का एकवचन = शयनम्। महाधनम्—महत् धन यस्य तम्। बहुव्रीहि समास। विबोध्यसे—वि + बुध् + णिच् = विबोधि। लट लकार मध्यम पुरुष का एकवचन =

विबोध्यसे । । स्तुतिगीतमङ्गलैः—स्तुतिना गीतय स्तुतिगीतय । षष्ठी तत्पुरुष समास । अथवा स्तुतयश्च गीतयश्च स्तुतिगीतय द्वन्द्व समास। स्तुतिगीतय एव मङ्गलानि तैः स्तुतिगीतमङ्गल । कर्मधारय समास । स्तु+क्तिन्=स्तुति । गै+क्तिन्=गीति । मङ्ग धातु (हित करना) से अलच् प्रत्यय होकर=मङ्गल । अदभ्रदर्भाम—अदभ्रा दर्भा यत्र ताम । बहुव्रीहि समास । स्थलीम—स्थल धातु (स्थिर होना) से स्थल्+अच्+ङीप्=स्थली । द्वितीया विभक्ति का एकवचन=स्थलीम् । अधिशय्य—अधि+शी+क्त्वा (ल्यप)=अधिशय्य । स्थलीम अधिशय्य—यहा अधि उपसर्ग पूर्वक शीङ् धातु के आधार स्थली की 'अधिशीङ्स्थासां कर्म' से कर्म संज्ञा होकर द्वितीया विभक्ति हुई । अशिव —न शिवैः । नञ तत्पुरुष समास । शिवारुत –शिवाना रुतै । षष्ठी तत्पुरुष समास । रु+क्त=रुत ।

अलंकार—विषम ।

जो बहुमूल्य बिस्तरे पर सोने योग्य है, वह दर्भबहुल भूमि पर सोता है जो मंगलकारी गीतो से जगाये जाने योग्य है, वह अमंगलकारी गीदडियो की रुदनध्वनियो से जगाया जाता है, इस प्रकार परस्पर अननुरूप पदार्थों का वर्णन करने से यहाँ विषम अलङ्कार है ।

छन्द—वंशस्थ ।

विशेष कथन—पहले समृद्धियो को भोग कर उसके बाद गरीबी की अवस्था को सहन करना बहुत अधिक कठिन होता है ।

घण्टापथ टीका- पुरेति । यस्त्वं महाधन बहुमूल्य श्रेष्ठ । 'महाधन महामूल्ये' इति विश्व । शयनं शय्यामधिरूढ सन स्तुतयो गीतयश्च ता एव मङ्गलानि तैः करणभूतैः पुरा विबोध्यसे । वैतालिकैरिति शेष । पूर्व बोधित इत्यर्थ । 'पुरि लङ चास्मे' इति भूतार्थे लट । त्वमदभ्रदर्भां बहुकुशाम् 'अस्त्री कुश कुशो दर्भ ' इति । 'अदभ्र बहुल' बहु इति चामर । स्थलीम् कृत्रिमभूमिम् । जानपद' इत्यादिना कृत्रिमार्थे ङीष् । एतेन तु सहस्पर्शत्व मुक्तम । 'अधिशीङ्स्थाऽऽसा कर्म इति कर्मत्वम् । अधिशय्य शयित्वा । 'अयङ यि क्ङिति' इत्ययङादेश । अशिवरमंगल शिवारुतैः क्रोष्टुवासितैः ।

'शिवा हरीतकी क्रोष्ट्री शमी तथामलक्युभे' इति वैजयन्ती । निद्रा जहासि । अद्येति शेष ॥३८॥

प्रकरण—दुर्योधन के विरुद्ध युधिष्ठिर के क्रोध को उद्दीप्त करने के लिये द्रौपदी ने उसके भाइयो भीम, अर्जुन नकुल और सहदेव की आपत्तियो का वर्णन करके उसको स्वय की आपत्तियाँ बताईं । पहली विपत्ति थी—युधिष्ठिर पहले महलो मे बहुमूल्य बिस्तरो पर सोता था और उसको जगाने के लिये मगलगीत गाये जाते थे । वही अब कुशो से युक्त वनस्थलियो मे सोता है और गीदडियो की अमगलकारी रुदनध्वनियो से जागता है । युधिष्ठिर की दूसरी विपत्ति का वह वर्णन करती है—

पुरोपनीत नृप रामणीयक
द्विजातिशेषेण यदेतदन्धसा ।
तदद्य ते वन्यफलाशिन पर
परैति कार्श्य यशसा सम वपु ॥३९॥

अन्वय—नृप ! पुरा ते यद् एतद् वपु द्विजातिशेषेण अन्धसा रामणीयकम् उपनीतम्, अद्य वन्यफलाशिनः तद् यशसा समम् परम् कार्श्यम् परैति ।

सस्कृत व्याख्या 'नृप !' हे राजन् ! 'पुरा' पूर्वम् इन्द्रप्रस्थस्य राजप्रासादेषु निवसता 'ते' तव युधिष्ठिरस्य 'यद् एतद् वपु यद् इद पुर दृश्यमान शरीर 'द्विजातिशेषेण' द्विजातीना ब्राह्मणाना शेषेण उपभुक्तावशिष्टेन 'अन्धसा' अन्नेन 'रामणीयक सौन्दर्यशालिताम् 'उपनीत' प्रापिताम् 'अद्य' अधुना अस्मिन् वनवासकाले 'वन्यफलाशिन' व यानि आरण्यकानि फलानि अश्नाति भुनक्ति इति तस्य 'तद' पूर्वोक्त सौन्दर्यशालि वपु यशसा' कीर्त्या 'सम' साध 'परम' अत्यधिक 'कार्श्य क्षीणत्व 'परैति' प्राप्नोति । तव शरीर यशश्च उभयमपि क्षीयते इति भाव ।

हिन्दी अर्थ—हे राजन् ! पहले जो तुम्हारा यह शरीर ब्राह्मणों के

उपभोग से बचे हुये अन्न से सौन्दर्य को प्राप्त हुआ था आज जंगली फलों को खाने वाले तुम्हारा वही शरीर, यश के साथ अत्यधिक क्षीण हो रहा है।

भाव—राजप्रासाद की भोजनशाला में पौष्टिक और स्वादिष्ट भोजन तैयार होते थे। पहले ब्राह्मणों को भोजन करा कर उसके बाद आप भोजन किया करते थे उस पौष्टिक अन्न को खाकर आपका शरीर अत्यन्त सुन्दर प्रतीत होता था। अब शत्रु द्वारा तिरस्कृत होकर वनों में चले आने से आपका यश तो क्षीण हो रहा है साथ ही जंगली फलों के खाने से शरीर भी क्षीण होता जा रहा है।

वाच्यपरिवर्तन—नृप पुरा ते यद् एतद् वपु द्विजातिशेष अन्ध रामणीय कम उपानयत् अद्य वन्यफलाशिन तेन वपुषा यशसा सम पर कार्श्यं परेयते।

टिप्पणियाँ

उपनीतम—उप + नी + क्त। रामणीयकम—रम् + अनीयर् = रमणीय। रमणीयस्य भाव अर्थ में रमणीय + वुञ् (अक) = रामणीयक। द्विजाविशेषेण—द्विजातीना शेषेण। षष्ठी तष्ठी तत्पुरुष समास। द्वाभ्या जन्म सस्काराभ्या जायते अर्थ मे द्वि + जन + क्तिन् = द्विजाति। ब्राह्मण का दो बार जन्म होता है। प्रथम माता के गर्भ से और दूसरी बार विद्या पढकर गुरु के गर्भ से। शिष + घञ = शेष। अन्धसा—अद् + असुन नुम् और ध होकर = अन्धस। तृतीया विभक्ति का एक वचन = अन्धसा। वन्यफलाशिन—वन्यानि फलानि वन्यफलानि। कर्मधारय समास। वन्यफलानि अश्नाति अर्थ मे वन्यफल + अश + णिनि = वन्यफलाशिन। षष्ठी विभक्ति का एक वचन = वन्यफलाशिन्। परति—परा + इण् धातु का लट लकार प्रथम पुरुष का एक वचन। कार्श्यम्—कृशस्य भाव अर्थ मे कृश + ष्यञ = कार्श्य। यशसा—सहयुक्ते प्रधाने सूत्र से सह के योग मे तृतीया विभक्ति हुई।

अलकार—हेतु और सहोक्ति। हेतु अलकार का लक्षण—

हेतोर्हेतुमता साध वर्णन हेतुरुच्यते

कारण के साथ कार्य का कथन करने पर हेतु अलकार होता है। इस पद्य मे 'वन्यफलाशिन ते वपु कार्श्य परति' मे कार्य कृशता के कारण वन्य

फलो के खाने का कथन किया जाने से हेतु अलकार है। सहोक्ति अलकार का लक्षण—

सहोक्ति सहभावश्चेत भासते जनरञ्जन ।

जहाँ मनोरञ्जक सहभाव का कथन किया जाय, वहाँ सहोक्ति अलकार होता है। यहाँ 'यशसा सह ते वपु' इस मनोरञ्जक सहभाव का कथन करने से सहोक्ति अलकार है।

छ द—वशस्थ ।

विशेष कथन—राजाओ का कर्त्तव्य है कि व पहले ब्राह्मणो को भोजन करा कर उसके बाद स्वय भोजन कर।

घण्टापथ टीका—पुरेति। हे नृप ! यदेतत्पुरोवर्त्ति वपु पुरा द्विजातिशेषेण द्विजभुक्तावशिष्टेनान्धसाऽन्नेन। 'भिस्सा स्त्री भक्तमन्धोऽन्नम' इत्यमर। रमणीयस्य भावो रामणीयकम् मनोहरत्वमुपनीत प्रापितम। नयतेर्द्विकर्मत्वात् प्रधाने कर्मणि क्त। 'प्रधानकर्मण्याख्येये लादीनाहुर्द्विकर्मणाम्' इति वचनात। अद्य व यफलाशिनस्ते तव तद्वपुर्यशसा सम परमतिमात्र कार्श्य परैति प्राप्नोति। उभयमपि क्षीयत इत्यर्थ। अत्र सहोक्तिरलकार। तदुक्त काव्यप्रकाशे—'सा सहोक्ति सहार्थस्य बलादेक द्विवाचकम्' इति ॥३९॥

***

प्रकारण—दुर्योधन के विरुद्ध युधिष्ठिर के क्रोध के भावो को उद्दीप्त करने के लिये द्रौपदी ने पहले उसके भाइयो—भीम, अर्जुन नकुल, सहदेव की दुरवस्था का वर्णन करके उसकी स्वय की बुरी अवस्था का वर्णन करना आरम्भ किया। वह उसकी दो अवस्थाओ शयन और भोजन को बताकर अब तीसरी दुर्दशा को बताती है—

अनारत यौ मणिपीठशायिना-
वरञ्जयद्राजशिर स्रजा रज ।
निषीदतस्तौ चरणौ वनेषु ते
मृगद्विजालूनशिखेषु बर्हिषाम् ॥४०॥

अन्वय—मणिपीठशायिनौ यौ राजशिर स्रजाम् रज अनारतम्

अरञ्जयत्, तौ ते चरणौ मृगद्विजालूनशिखेषु बर्हिषाम वनेषु निषीदत ।

सस्कृत-व्याख्या—'मणिपीठशायिनौ' मणिजटित पीठ मणिपीठ तस्मिन शयाते तिष्ठत इति तौ मणिपीठशायिनौ मणिपीठस्थितौ 'यथ 'यौ इमौ पुर दृश्यमानौ चरणौ राजशिर स्रजा' राज्ञा प्रणमता भूपती।। शिरसा मस्तकाना स्रजा दाम्ना शिरोनिहिताना पुष्पमालानाम इत्यर्थ 'रज' पराग 'अरञ्जयत्' अलचकार 'तौ' तादशौ ते' तव 'चरणौ पादौ मृगद्विजालून शिखेषु मृगै हरिण द्विज ब्राह्मण च आलूना छिन्ना शिखा अग्रभा।। येषा तेषा 'बर्हिषा' दर्भाणा 'वनेषु' अरण्येषु' 'निषीदत' स्थिति लभेते ।

हिन्दी अर्थ—मणिपीठ पर रखे हुये जिन तुम्हारे पैरो को प्रणाम करते हुये राजाओ के सिरो की मालाओ का पराग निरन्तर रगा करता था तुम्हारे वे ही पैर हरिणो और तपस्वियो द्वारा काटे गये सिरो वाले कुशो के वनो मे पड रहे है ।

भाव—जब आप राजसभा मे बैठकर पैरो को मणियो के बने हुए पीठ पर रखा करते थे उस समय आपके आधिनस्थ राजा आपको प्रणाम किया करते थे । राजाओ के मस्तको पर धारण की हुई मालाओ का पराग आपके पैरो पर गिर जाता था और उससे आपके पैर रग जाते थे । परन्तु आपको अब वनो मे घूमना पडता है । इन वनो मे नोकीली कुशायें उगी हुई है, जो हरिणियो द्वारा चरने के कारण और तपस्वियो द्वारा काट लिये जाने के कारण ऊपर के कोमल भाग के न रहने से और भी अधिक नोकीली हो गई है । आपके कष्टो का कोई अन्त दिखाई नही देता ।

वाच्यपरिवर्तन—मणिपीठशायिनौ यौ राजशिर स्रजा रजसा अनारतम अरज्येता ताभ्या ते चरणाभ्या मृगद्विजालूनशिखेषु बर्हिषा वनेषु निषद्यते ।

टिप्पणियाँ

अनारतम—आ + रम + क्त = आरत । न आरत = अनारत । नञ तत्पुरुष समास । निरन्तर बने रहना । मणिपीठशायिनौ = मणिनिर्मित पीठ शाकपार्थिवादिना सिद्धये उत्तर पदलोपस्योपसख्यानम' नियम से समास होकर निर्मित का लोप होकर, मणिपीठम । कर्मधारय समास । मणिपीठे शयितु शील यस्य

स अर्थ मे मणिपीठ+शी+णिनि=मणिपीठशयिन् । द्वितीया विभक्ति का द्विवचन =मणिपीठशायिनौ । अरञ्जयत — रञ्ज धातु लङ लकार प्रथम पुरुष का एकवचन । निषीदत —नि+सद् धातु का लट लकार प्रथम पुरुष का द्विवचन । वनेषु—वन शब्द का सप्तमी विभक्ति का बहुवचन । मृगद्विजालून शिखेषु—मृगाश्च द्विजाश्च मृगद्विजा । द्वन्द्व स मास । मृगद्विजै अलूना मृग द्विजालूना । तृतीया तत्पुरुष समास । मृगद्विजालूनशिखा येषु तेषु मृगद्विजालून शिखेषु । बहुव्रीहि समास । द्वाभ्या ज मसस्काराभ्या जात अर्थ मे द्वि+जन+ड=द्विज । आ+लू+क्त=आलून ।

अलकार—विषम और परिकर ।

कहा तो फूलो की कोमलता और पराग की सुगन्धि के योग्य तुम्हारे चरण और कहा यह कुशो का नोकीलापन और वन की धूल । इस प्रकार परस्पर अननुरूप वस्तुओ की घटना का वर्णन करने से विषम अलकार है ।

'मृगद्विजालूनशिखेषु वनेषु' मे वन के मृगद्विजालूनशिखेषु इस विशेषण को विशेष अभिप्राय से कहा गया है । इससे वन मे घूमने से पैरो मे होने वाले अत्यधिक कष्ट का बोध होता । विशेषण के साभिप्राय होने से परिकर अलकार है ।

छन्द — वशस्थ ।

विशेष कथन—वनो मे रहना अत्यधिक कष्ट का कारण होता है । जिनको वहाँ रहने का अभ्यास नही है वे उस कष्ट को अत्यधिक अनुभव करते है ।

घण्टापथ टीका—अनारतमिति । अनारतमजस्र मणिपीठशायिनौ मणिमय पादपीठशायिनौ यौ चरणौ राजशिर स्रजा नमद्भूपालमौलिस्रजा रज परागोऽरञ्जयत्, तौ ते चरणौ मृगद्विजश्च तपस्विभिरालूनशिखेषु छिन्ना ग्रेषु बर्हिषा कुशानाम । 'बर्हि कुशहुताशयो' इति विश्व । वनेषु निषीद तस्तिष्ठत ।।४०।।

प्रकरण—दुर्योधन के विरुद्ध युधिष्ठिर के भावो को उद्दीप्त करती हुई द्रौपदी कह रही है कि हे राजन ! इस प्रकार आपके छोटे भाईयों और

स्वय आपकी इस दुर्योधन के कारण ानो मे यह दुदशा हो रही है। शापकी इस दशा के शत्रुओ द्वारा किये जाने क कारण ही मुझको अत्यधिक दु ख होता है—

द्विषन्निमित्ता यदिय दशा तत

समूलमुन्मूलयतीव मे मन ।

परैरपर्यासितवीर्यसम्पदा

पराभवोऽप्युत्सव एव मानिनाम ॥४१॥

अन्वय—यत् इयम दशा द्विषन्निमित्ता तत मे मन समूलम उन्मीलयति इव। परै अपर्यासितवीर्यसम्पदाम् मानिनाम् पराभव अपि उत्सव एव।

सस्कृत व्याख्या—'यत' यस्मात कारणात् 'इयम एषा ते दशा' दुर वस्था 'द्विषन्निमिता' द्विष त एव निमित हेतु यस्या तादशी वतते 'तत' तस्मात कारणात एव इय मे' मम मन' चित्त 'समूल' सम्पूर्णरूपेण 'उन्मूलयति इव' समुत्पाटयति इव। 'पर' शत्रुभि 'अपर्यासितवीर्यसम्पदा' अपर्यासिता न समापिता वीर्यस्य शौर्यस्य सम्पद् सम्पत्ति येषा तेषा 'मानिना' मनस्विना 'पराभव' पराजय अपि उत्सव एव' हर्षस्य कारणम एव। पराक्रम प्रदर्शयता यदि पराजय भवेत तत्र न शोकस्य अवसर। युद्धे जय पराजयो वा भवत्येव। पर युद्ध विनैव कातरत्वेन यत् शत्रुभि तिरस्कार तदेव मे मन व्यथयति इति भाव।

हिन्दी अर्थ—क्योंकि तुम्हारी यह बुरी अवस्था शत्रुओं द्वारा उत्पन्न की गई है, इसीलिये वह मेरे मन को मानो जड़ से उन्मूलित कर रही है। जिनकी शौर्य की सम्पत्ति को शत्रु समाप्त नहीं कर सके, उन स्वाभिमानी व्यक्तियो की पराजय भी हर्ष का ही कारण होती है।

भाव- यद्यपि सभी प्राणियो पर विपत्ति का आना स्वाभाविक है, तथापि हम पर यह आपत्ति स्वाभाविक रूप से नहीं आई है। यदि यह स्वाभाविक रूप से आई होती तो मेरे मन को इतना कष्ट नही होता। यह विपत्ति हम पर शत्रुओ द्वारा लाई गई है और आपने कायरतावश इसका प्रतिकार नही

किया। इसलिये मेरे मन मे इतनी अधिक पीडा है। युद्ध मे हारना और जीतना तो क्षत्रियो के लिये होता ही रहता है। यदि पराक्रम को प्रदर्शित करते हुये हार जावे, तो इसमे कोई शोक की बात नही है, पर तु पौरुष हीनता के कारण होने वाली पराजय तीव्र दु ख का कारण है।

वाच्यपरिवर्तन—यद् अनया दशया द्विषन्निमित्तया भूयते, तत मे मन समूलम उ मूल्यते। पर अपर्यासितवीयसम्पदा मानिना पराभवन अपि उत्सवेन इव (भूयते)।

टिप्पणियाँ

द्विषन्निमित्ता—द्विष त एव निमित्त यस्या सा। बहुव्रीहि समास। द्विष +शतृ=द्विषत। नि+मिद्+क्त=निमित्त। **तत**—तद् सवनाम शब्द से पञ्चमी विभक्ति के अथ म तसिल प्रत्यय। तद्+तसिल। **समूलम**—मूलेन सह वतमान य समूल। बहुव्रीहि समास। तद् यथा स्यात तथा समूलम। यह क्रिया विशेषण है। **अपर्यासितवीयसम्पदाम** न पर्यासिता अपर्यासिता। नज तत्पुरुष समास। वीयस्य सम्पत वीयसम्पत षष्ठी तत्पुरुष समास। अपर्यासिता वीयसम्पद् यषा तेषाम् अपर्यासितवीयसम्पदाम बहुव्रीहि समास। परि+अास+णिच+क्त=पर्यासित। सम्+पद्+क्विप=सम्पत्। **पराभव**—परा+भू+अच। उत्सव उत+सू+अप **मानिनाम**—मान अस्य अस्ति अथ मे मान+णिनि=मानिन्। षष्ठी विभक्ति का बहुवचन= मानिनाम।

अलकार—उत्प्रेक्षा और अर्था तर यास।

उपमेय के स्थान पर उपमा की सम्भावना करने से उत्प्रेक्षा अलकार होता है। यहा, बहुत अधिक पीडित कर रही है, इस क्रिया के स्थान पर मानो जड से उ मूलित कर रही है, इस क्रिया की सम्भावना किये जाने से उत्प्रेक्षा अलकार है।

'शत्रुओ द्वारा उत्पन्न की गई दशा मेरे मन को अत्यधिक पीडित कर रही है' इस विशेष का समथन शत्रुओ द्वारा अप्रतिहत शौय वाले स्वाभिमानियो की पराजय भी हष के कारण है', इस सामान्य से वैधम्य द्वारा किया जाने से यहा **अर्थान्तर यास** अलकार है।

छन्द—वंशस्थ ।

विशेष कथन क्षत्रियों का धर्म वीरता पूर्वक युद्ध करना है। पौरुष का प्रदर्शन करते हुये उनका पराजित हो जाना उतना दुःखद नहीं होता, जितना कि कायरता पूर्वक पलायन कर जाना होता है।

घण्टापथ टीका द्विषदिति । यद्यत कारणादियं दशाऽवस्था । 'दशा वर्तिविवस्थायाम' इति विश्व । द्विषतो निमित्तं यस्याः सा । 'द्विषोऽमित्रे' इति शतृ प्रत्यय । अतो मे मन समूलं माशयमु मूलयतोवोत्पाटयतीव । दवकी त्वापन्न दुःखायेत्याह—नररिति । पर शत्रुभिरपर्यासिताऽपर्यवसिता वीयसपद्यपा तेषा मानिना मातहानिदु सहा, न त्वापदिति भाव ॥४१॥

प्रकरण—दुर्योधन के प्रति युधिष्ठिर के क्रोध को उद्दीप्त करने का प्रयत्न करती हुई द्रौपदी चारों भाइयों और उसके बाद स्वयं युधिष्ठिर की दुर्दशाओं का वर्णन करती है। उसके बाद वह बताती है कि क्षत्रियों के लिये कायरता पूर्वक पराजय स्वीकार कर लेने से बड़ा दुःख दूसरा नहीं है। अब वह राज धर्म को बताती

विहाय शान्ति नृप! धाम तत्पुन
प्रसीद सन्धेहि वधाय विद्विषाम् ।
व्रजन्ति शत्रूनवधूय नि स्पृहा
शमेन सिद्धि मुनयो न भूभृत ॥४२॥

अन्वय—नृप! शान्ति विहाय विद्विषा वधाय तद् धाम पुन सधेहि । प्रसीद । नि पृहा मुनय शमेन शत्रून् अवधूय सिद्धिम व्रजन्ति न भूभृत ।

संस्कृत व्याख्या—'नृप !' हे राजन् 'शान्ति' शम 'विहाय' परित्यज्य 'विद्विषा' शत्रूणा 'वधाय' विनाशाय तद' पूर्व प्रसिद्ध धाम' तेज 'पुन' भूय 'स धेहि' स्वीकुरु। 'प्रसीद' प्रसन्नो भव । 'नि स्पृहा' निष्कामा 'मुनय' तपस्विन 'शमेन' शमा दम इत्यादिगुण क्रोधवर्जनेन इति भाव 'शत्रून' कामादीन् षड्रिपून् 'अवधय' विजित्य सिद्धि' सफलता 'व्रजन्ति' गच्छन्ति पर

भूभृत ' राजान 'शमेन शा त्या रिपून पवधूय सिद्धि न व्रजन्ति । शान्तिम वलम्ब्य वय शत्रून् जेष्याम, इति तु न अस्माक धम परतु मुनीनामेव धम । राज्ञा तु पौरुषावलम्बनमेव धम ।

हिन्दी अथ—हे राजन ! शान्ति को छोडकर शत्रुओ का वध करने के लिये आप उस तेज को पुन स्वीकार कीजिये । आप प्रसन्न होइये । कामनाओ से रहित मुनिजन शम आदि गुणो से शत्रुओ को जीत कर सफलता को प्राप्त करते हैं, परन्तु राजा शान्ति को स्वीकार करके सफलता प्राप्त नही कर सकते ।

भाव—इसलिये हे राजन् ! क्षात्रधम का विचार करते हुये आपको शान्ति की नीति का परित्याग कर देना चाहिये और युद्ध करने के लिये तत्पर हो जाना चाहिये । इसी म आपकी हमारे लिये प्रसन्नता है । यह मुनियो का ही काम है कि वे अपकार करने वाले व्यक्तियों के प्रति भी शान्ति और स्नेह का व्यवहार करे । राजाओ का काय तो पौरुष का प्रदशन करते हुये शत्रुओ को नष्ट कर देना है ।

वाच्यपरिवतन—नृप ! शान्ति विहाय विद्विषा वधाय भवता तद् धाम पुन स धातव्यम्, प्रसीदितव्यम् । नि स्पृहै मुनिभि शमेन शत्रव अवधूय सिद्धि व्रज्यते न भूभृद्भि ।

टिप्पणियाँ

शान्ति—शम+क्तिन् । **विहाय** वि+हा+क्त्वा (ल्यप्) **प्रसीद**—प्र+सद धातु का लोट लकार मध्यम पुरुष का एकवचन । **स धेहि**—सम+धा धातु का लोट लकार मध्यम पुरुष का एकवचन । **धाम**—दधाति इदम अथवा धीयते अनेन अथ म धा+मनिन=धामन । नपुसकलिङ्ग में प्रथमा विभक्ति का एकवचन=धाम । **विद्विषाम**—वि=द्विष+क्विप=विद्विष् । षष्ठी विभक्ति का बहुवचन=विद्विषाम । **शत्रून**—शद्+त्रुन्=शत्रु । द्वितीया विभक्ति का बहुवचन=शत्रून । **अवधूय**—अव+धू+क्त्वा (ल्यप्) । **नि स्पृहा**—निरस्ता स्पृहा यषा ते । बहुव्रीहि समास । स्पृह+अ+टाप्=स्पृहा । **सिद्धिम**=सिध्+क्तिन् । **मुनय**—मनुते जानाति अथ मे मन्+इन् (अ को आदेश)=मुनि । प्रथमा विभक्ति का बहुवचन=मुनय । **भभृत**—

भुव विभर्ति अथ मे भू+भृ+क्विप्=भूभृत पथमा विभक्ति का बहुवचन= भूभृत ।

अलकार—अर्था तर यास और परिसख्या ।

'हे राजन् ! आप शान्ति को छोड कर शत्रुओ के विनाश के लिये तेज को अङ्गीकार कीजिय । इस विशप का राजा शाति द्वारा सफलता को प्राप्त नही करत, इस सामा य द्वारा समथन किया जाने से **अर्था तर यास** अलकार है ।

परिसख्या अलकार का लक्षण—

परिसख्या निषिध्यैकमेकस्मिन वस्तुय त्रणम

एक मे निषेध करके दूसरी मे वस्तु की स्थापना करने से परिसख्या अलकार होता है । शम का राजा मे निषेध करके मुनियो मे स्थापना करने से परिसख्या अलकार है ।

छन्द वशस्थ ।

विशेष कथन—राजाओ का शासन तेजस्विता से ही बना रह सकता है, शाति को धारण करने से नही । प्रजा का पालन, राज्य की सुरक्षा और शत्रुओ का विनाश क्षात्रतेज से ही सम्भव है ।

घण्टापथ टीका—विहायेति । हे नृप ! शाति विहाय तत्प्रसिद्ध धाम तेजो विद्विषा वधाय पुन स तेह्म गीकुरु प्रसीद । प्राथनाया लोट । ननु शमेन कायसिद्धौ कि क्रोधेनेत्यत आह—व्रज तीति । नि स्पृहा मुनय शत्रून् अवधय निर्जित्य शमेन क्रोधवजनेन सिद्धि व्रज ति । भूभृतस्तु न । कैवल्यकायवद्रा ज्यकाय न शाति साध्यमित्यथ ।। ४२ ।।

*****

प्रकरण—युधिष्ठिर की क्षात्र भावनाओ को उद्दीप्त करने के लिये द्रौपदी दुर्योधन द्वारा किये जाने वाले अपमानो और कष्टो का वर्णन कर वह पाचो भाईयो की दुर्दशा का वर्णन करके कहती है कि आपको क्षत्रिय राजाओ के योग्य व्यवहार करना चाहिये । शान्ति राजाओ का काय नही । अब वह युधिष्ठिर की शान्त वृत्ति पर पुन व्यङ्ग्य करती है—

पुर सरा धामवतां यशोधना
सुदु सहं प्राप्य निकारमीदृशम् ।
भवादृशाश्चेदधिकुर्वते रति
निराश्रया हन्त ! हता मनस्विता ॥४३॥

अन्वय — धामवताम् पुरस्सरा यशोधना भवादृशा ईदृशम् सुदु सहम् निकारम् प्राप्य चेत् रतिम् अधिकुर्वते, हन्त निराश्रया मनस्विता हता ।

संस्कृत व्याख्या—'धामवता' धाम तेज अस्ति इति तेषा तेजस्विना पराभवम् असहमानानाम् इति भाव 'पुर सरा' पुर अग्रे सरन्ति यान्ति इति ते अग्रयायिन इति भाव यशोधना' एव कीर्ति एव धन वित्त येषा ते 'भवादृशा' भवद्विधा ईदृशम्' ऐवविध 'सुदु सहम्' अत्यन्तम असह्य निकार' प्राप्य' अधिगम्य 'चेद्' यदि 'रति सन्तोषम अधिकुर्वते' आश्रयन्ति, 'हन्त' इति खेदे 'निराश्रया' निरस्त आश्रय शरण यस्या तथाभूता 'मनस्विता' स्वाभिमानिता हता' विनष्टा । यदि भवादृशा तेजस्विन क्षत्रिया अपि शत्रुकृतम् अपमान सहन्ते, मनस्विता विनष्टा भविष्यति । अत शान्ति परित्यज्य शत्रुविनाशाय क्षात्र तेज सन्धेहि इति भाव ।

हिन्दी अर्थ—तेजस्वियों में अग्रणी, यश को ही धन समझने वाले आप जैसे व्यक्ति इस प्रकार की अत्यन्त असह्य लाञ्छना को पाकर यदि सन्तोष का आश्रय लेते हैं, तो खेद है कि स्वाभिमानिता तो आश्रयहीन होकर नष्ट हो गई ।

भाव—आप तेजस्वियो मे अग्रगणी है, आप यश को धन मानते है । अत आपके लिये इस प्रकार का अपमान सहन करना उचित नही है । यदि आप जैसे तेजस्वी और बलशाली व्यक्ति भी शत्रुओ द्वारा किये गये अपमानो को सहन करते रहेगे, तो और कौन व्यक्ति अत्याचारो का अन्त करेगा । अत शान्ति को छोडकर तथा क्षात्र तेज को स्वीकार करके शत्रुओ का पराभव करने के लिये तयार हो जाइये ।

वाच्यपरिवर्तन—धामवता पुर सरै यशोधन भवादृश सुदुस्सह निकार प्राप्य चेद् रति अधिक्रियते, ह त निराश्रयया मनस्वितया हतम।

छिप्पणियाँ

पुरा सरा- पुर सरति इति पुर सरा । पव+असि=पुरस । सृ+अच =सर। **धामवताम**=धाम अस्य अस्ति अथ मे धाम+मतुप=धामवत। षष्ठी विभक्ति का बहुवचन=धामवताम। **यशोधना**—यश एव धन येषा ते बहुव्रीहि समास। **सुदुस्सहम** दु खेन सह्यम दुस्सहम । अत्य त दुस्सहम सुदुस्सहम दुर+सह+खल=दुस्सह। **प्राप्य**—प्र+आप्+क्त्वा (ल्यप्)। **निकारम** नि+कृ+घञ=निकार। **ईदृशम**—इदम इव दृश्यते अथवा इदम् इव पश्यति एाम् अथ मे इदम्+दृश+क 'इद किमोरीश्की सूत्र से इदम् को, ई आदेश=ईदृश। **भवादृशा**—भवान् इव दृश्य ते अथवा भवन्तम् इव पश्यति एाम अथ मे भवत+दश+क=भवादश। **अधिकुर्वते**—अधि +कृ धातु से आत्मनेपद मे लट लकार प्रथम का बहुवचन। यहा क्रिया-रति को धारण करने का प्रभाव कर्त्ता पर पडने से आत्मनेपद हुआ। **रतिम्**-रम्+क्तिन्=रति। द्वितीया विभक्ति का एकवचन=रतिम्। **निराश्रया**—निरस्त आश्रय यस्या सा। बहुव्रीहि समास। आ+श्रि+अच्=आश्रय **हन्त**—यह अव्यय है इसका प्रयोग आश्चय, शोक हृप आदि आवेगो को प्रकट करने के लिये किया जाता है। **हता**—हन+क्त+टाप्। **मनस्विता**—प्रशस्त मन यस्य अस्ति अथ मे मनस्+विनि=मनस्विन। मनस्विन भाव अथ म मनस्विन्+तल+टाप=मनस्विता।

अलकार—परिकर।

धामवता पुरा सरा और यशोधना, इन विशेषणो का प्रयोग इस अभिप्राय से किया गया, क्योकि इस प्रकार के व्यक्ति अपमान को भी सहन नही करते अत इस प्रकार कहने पर युधिष्ठिर निश्चय ही अपमान का प्रतिशोध लेगा, ऐसी आशा की जा सकती है।

छन्द—वशस्थ।

विशेष कथन—तेजस्वी और मनस्वी मनुष्य अपमान को सहन नही कर सकते।

घण्टापथ टीका—पुर इति । किं च धामवता तेजस्विनाम । परनिकारा सहिष्णूनाम इत्यर्थ । पुर सरतीति पुरसरा अग्रेसरा । पुरोऽग्रतोऽग्रेषु सर्तेः' इति ट प्रत्यय । यशोधना भवादृशा सुदुःसहमतिदुःसहमीदृशमुक्त प्रकार निकार पराभव प्राप्य रति स तोषमधिकुर्वत चेत्तर्हि हन्त इति खेदे । मनस्विताऽभिमानिता निराश्रया सती हता । तेजस्विजनकशरणत्वा म नस्वितायां इत्यर्थ । अत पराक्रमित व्यमिति भाव । यद्यप्यत्र प्रसहनस्यासग तरधि पूर्वात्करोते 'अधे प्रहसन' इत्यात्मनेपद न भवति, प्रसहन परिभव' इति काशिका, तथाऽप्यस्या कर्त्रभिप्रायविवक्षायामेव प्रयोजकत्वात्कर्त्रभिप्राय 'स्वरितञित'—इत्यात्मनेपद प्रसिद्धम ।।४३।।

प्रकरण—युधिष्ठिर की क्षात्र भावनाओ को उद्दीप्त करने के लिये द्रौपदी ने उसके द्वारा किये जाने वाले अपमानो और कष्टा का विस्तार से उल्लेख करके कहा है कि आपको क्षत्रिय राजाओ के कर्त्तव्य का पालन करना चाहिये और शान्ति का परित्याग करके अपमान का प्रतिशोध लेना चाहिये । फिर कहती है कि यदि आप क्षमा को ही उचित समझते हैं तो—

अथ क्षमामेव निरस्तविक्रम
श्चिराय पर्येषि सुखस्य साधनम् ।
विहाय लक्ष्मीपतिलक्ष्म कार्मुक
जटाधर सञ्जुहुधीह पावकम् ॥४४॥

अन्वय—अथ निरस्तविक्रम क्षमाम एव चिराय सुखस्य साधनम पर्येषि, लक्ष्मीपतिलक्ष्म कार्मुकम् विहाय जटाधर इह पावकम् सञ्जुहुधि ।

संस्कृत व्याख्या—'अथ' यदि त्व 'निरस्तविक्रम' निरस्त समाप्त विक्रम शौर्य यस्य तथाभूत निर्वीय सन 'क्षमा' शान्तिम एव 'चिराय' चिरकाल यावत् 'सुखस्य' आनन्दस्य 'साधन' कारण 'पर्येषि' म यसे । क्षमा एव सुखसाधनहेतु इति त्वम अवगच्छसि, क्षात्र तेज समालम्ब्य प्रतिशोध न करोषि इति भाव । तदा लक्ष्मीपतिलक्ष्मकार्मुक' लक्ष्मी राज्यश्री तस्या पति स्वामी राजा

तस्य लक्ष्म चिह्न यस्मिन् तादृश कार्मुक धनु 'विहाय' परित्यज्य जटाधर जटिल सन 'इह' अस्मिन वने 'पावकम्' अग्नि सञ्जुहुधि'सम्यक प्रकारेण हवन कुरु आहवस्व इत्यथ । राजचिह्नानि परित्यज्य तपस्विना चिह्नानि धार्णीयानि इत्यथ ।

हि दी अथ—यदि तुम निर्वीय होकर क्षमा को ही चिरकाल तक सुख का साधन समझते हो, तो राजचिह्नों से अंकित धनुष को छोड़कर जटाओं को धारण करके इस वन मे अच्छी प्रकार हवन करो ।

भाव यदि तुम मे क्षात्र तेज समाप्त हो गया है, तुम प्रतिशोध लेने में असमथ हो और क्षमा करने को ही सदा के लिये सुख प्राप्त करने का साधन समझते हो, तो इन राजचिह्नो को धारण करने की आवश्यकता ही क्या है । विरत्त को इस धनुष से क्या लेना है । इसे तुम त्याग दो और जटाओ को धारण कर लो तथा यही वन मे हवन करते रहो ।

वाच्यपरिवतन- अथ निरस्तविक्रमेण त्वया क्षमा एव चिराय सुखस्य साधन पर्येष्यते, लक्ष्मीपतिलक्ष्मकार्मुक विहाय जटाधरेण इह पावक सहुवनीय ।

टिप्पणियाँ

क्षमाम् – क्षम् + अङ + टाप् = क्षमा । द्वितीया विभक्ति का एक वचन = क्षमाम् । निरस्तविक्रम —नि शेषेण अस्त विक्रम यस्य स । बहुव्रीहि समास । निर् + अस् + क्त = निरस्तर । वि + क्रम + अच् = विक्रम । चिराय — चिरेण अयते अथ मे चिर + अय् + अण । पर्येषि —परि + इण धातु से लट लकार मध्य पुरुष का एक वचन । साधनम् -साध् + ल्युट (अन) । विहाय-वि + हा + क्त्वा (ल्यप) । लक्ष्मीपतिलक्ष्मकार्मुकम्—लक्ष्म्या पति लक्ष्मीपति । षष्ठी तत्पुरुष समास । लक्ष्मीपते लक्ष्म यस्मिन् तत लक्ष्मीपतिलक्ष्मम् । बहुव्रीहि समास । लक्ष्मीपतिलक्ष्म च तत् कार्मुकम लक्ष्मीपति लक्ष्मकार्मुकम । कमधारय समास । लक्षयति पश्यति उद्योगिन अथ मे लक्ष् + ई (मुट का आगम) = लक्ष्मी । पाति रक्षति अर्थ मे पा + डति = पति । लक्षति चिह्नयति लक्ष + मनिन् = लक्ष्मन कमणे प्रभवति अथ मे कम + उकञ = कार्मुक । जटाधर — जटा, धरति अथ मे जटा + धृ + अच् = जटाधर । सञ्जुहुधि —सम + हु धातु

से लोट लकार मध्यम पुरुष का एकवचन । पावकम—पुनाति पवित्र करोति अर्थ मे पू + ण्वुल् (अक)=पावक द्वितीया विभक्ति का एक वचन= पावकम ।

अलकार—अनुप्रास और परिकर ।

'लक्ष्मीपतिलक्ष्मकार्मुकम' म लक्ष्मी और लक्ष्म मे अनेक वर्णों का एक बार सादृश्य होने के कारण यह वृत्ति अनुप्रास है ।

इस पद्य मे युधिष्ठिर के लिये निरस्तविक्रम ' और 'जटाधर ' विशेषणो का प्रयोग अभिप्राय से गर्भित है । प्रशस्य क्षत्रिय राजवश मे उत्पन्न युधिष्ठिर के लिये इन शब्दो का प्रयोग उसकी क्रोधाग्नि को भडकाने के लिये किया गया है ।

छन्द वशस्थ ।

विशेष कथन—क्षमा गुण ससार से विरक्त और मोक्षसाधना मे लगे हुये तपस्वियो के लिये हो सकता है राजा के लिये क्षमा गुण का आश्रय न ले कर शत्रुओ के प्रति पराक्रम का प्रदर्शन करना ही योग्य है ।

घण्टापथ टीका—अथेति । अथ पक्षान्तरे निरस्तविक्रम सन । चिराय चिरकालेनापि क्षमा क्षान्तिमेव । 'क्षितिक्षान्त्यो क्षमा' इत्यमर । सुखस्य साधन पर्यवगच्छसि तर्हि लक्ष्मीपतिलक्ष्म राजचिह्न कार्मुक विहाय । धरतीति धर । पचाद्यच् । जटाना धरो जटाधर सन्निह वने पावक जुहुधि । पावके होम कुर्वित्यथ । अधिकरणे कर्मत्वोपचार । विरक्तस्य किं धनुषा इत्यर्थ । 'हुझल्भ्यो हेर्धि ' ॥४४॥

प्रकरण—युधिष्ठिर के क्षात्र तेज को उद्दीप्त करने और उसकी प्रतिशोध लने की भावनाओ को भडकाने के लिये द्रौपदी ने पहले दुर्योधन द्वारा दिये जाने वाले कष्टो और अपमानो का वर्णन किया । उसके बाद उसने क्षत्रिय राजाओ के लिये योग्य कर्त्तव्यो का उपदेश दिया । अब वह प्रतिज्ञा के भंग से डरने वाले युधिष्ठिर से कहती है—

न समयपरिरक्षणं क्षमं ते
निकृतिपरेषु परेषु भूरिधाम्नः ।
अरिषु हि विजयार्थिनः क्षितीशा
विदधति सोपधि सन्धिदूषणानि ॥४५॥

अन्वय—परेषु निकृतिपरेषु भूरिधाम्न ते समयपरिरक्षणम् क्षमम् न । हि विजयार्थिन क्षितीशा अरिषु सोपधि सन्धिदूषणानि विदधति ।

संस्कृत व्याख्या—परेषु शत्रुषु 'निकृतिपरेषु' निकृति अपमान नीचता अपकारो वा तत्परेषु सत्सु शत्रुषु कपटमार्गेण अपकार कुर्वत्सु सत्सु इति भाव, 'भूरिधाम्न' भूरि महत् धाम तेज यस्य तस्य प्रतिशोधसमर्थस्य इत्यर्थ ते तव युधिष्ठिरस्य 'समयपरिक्षण' समयस्य प्रतिज्ञाया परिरक्षण परिपालन कालस्य प्रतीक्षण वा न क्षम न युक्तम । 'हि' निश्चयेन विजयार्थिन ' विजयस्य जयस्य अर्थिन अभिलाषिण 'क्षितिशा ' राजान 'अरिषु' शत्रुषु 'सोपधि' उपधि कपट तेन सह सोपधि सकपटम इति भाव 'सन्धिदूषणानि' सन्धिभगदोषान् 'विदधति' आरोपयन्ति । विजय एव राज्ञा प्रधान लक्ष्यम् । यदा शत्रव कपटाचरण कुर्वन्ति तदा तेजस्विन समर्था राजान शत्रुषु सकपट सन्धिभगदोषान आरोप्य स्वयमेव आक्रमण कुर्वन्ति इति भाव ।

हिन्दी अर्थ—शत्रुओं द्वारा धतता और अपमान का व्यवहार करने पर अत्यधिक तेजस्वी तुम्हारे लिये प्रतिज्ञा का पालन करते रहना उचित नहीं क्योकि विजय को चाहने वाले राजा शत्रुओं पर कपट के साथ सधिभग के आरोप लगा देते हैं ।

भाव—आप प्रतिज्ञा का भग होगा इस पाप से डरते है, इसलिये युद्ध का आश्रय नही ले रहे हैं । परन्तु राजनीति मे प्रतिज्ञा का विशेष महत्त्व नहीं होता । यहाँ शक्ति और विजय का ही महत्त्व है । विजय पाने वाले राजा शत्रु को कमजोर देखकर उस पर कोई भी झूठा आरोप लगाकर सधि तोड देते हैं और उस पर आक्रमण कर देते है । फिर दुर्योधन तो आपके प्रति कपट का आचरण कर रहा है । इसलिये उसके साथ की गई प्रतिज्ञा की रक्षा

करने का कोई औचित्य नही है। बारह वर्षों के वनवास और एक वर्ष के अज्ञातवास की प्रतिज्ञा की रक्षा करना और उस समय की प्रतीक्षा करते रहना आपके लिये उचित नही है। आपको शत्रुओं से प्रतिशोध लेने और उनके द्वारा किये जाने वाले षडयन्त्रों का प्रतिकार करने के लिये तुरन्त सन्नद्ध हो जाना चाहिये।

वाच्यपरिवर्तन—परेषु निकृतिपरेषु भूरिधाम्न त समयपरिरक्षण क्षम न। हि विजयार्थिभि क्षितीश अरिषु सोपधि सन्धिदूषणानि विधीयन्ते।

टिप्पणियाँ

समयपरिरक्षणम्—समयस्य परिरक्षणम्। षष्ठी तत्पुरुष समास। सम + + अच = मय। परि + रक्ष + ल्युट (अन) = परिरक्षण। क्षमम्—क्षम + न् = क्षम। निकृतिपरेषु—निकृति परम् एषाम् तेषु। बहुव्रीहि समास। नि + कृ + क्तिन = निकृति। भूरिधाम्न—भूरिधाम येषा बहुव्रीहि समास। समास। अरिषु—ऋ + इन = अरि। सप्तमी विभक्ति का बहुवचन = अरिषु। विजयार्थिन—विजयस्य अर्थिन षष्ठी तत्पुरुष समास। वि + जि + अच = विजय। अर्थ + इनि = अर्थिन। प्रथमा विभक्ति का बहुवचन अर्थिन। क्षितीशा—क्षिते ईशा। षष्ठी तत्पुरुष समास। क्षि + क्तिन = क्षिति। सोपधि—उपधिना सह सोपधि। यह क्रियाविशेषण है। उप + धा + कि = उपधि। सन्धिदूषणानि—सन्धे दूषणानि। षष्ठी तत्पुरुष समास। सम + धा + कि = सन्धि। दुष + णिच + ल्युट (अन)—दूषण। विदधति—वि + धा धातु लट लकार प्रथम पुरुष बहुवचन।

अलकार—अर्थान्तरन्यास।

इस पद्य मे 'तुम्हारे लिये प्रतीज्ञा का पालन करना उचित नही है' इस विशेष का समर्थन 'विजय को चाहने वाले राजा शत्रुओं पर सन्धिभग के आरोप लगा देते हैं' इस सामान्य से किया जाने के कारण यहा अर्थान्तरन्यास अलकार है।

छन्द—पुष्पिताग्रा। पुष्पिताग्रा छन्द का लक्षण—

अयुजि नयुगरेफतोयकारो
युजि च नजौ जरगाश्च पुष्पिताग्रा॥